ईश महिमा

-वीरेन्द्र गुप्तः

श्री वीरकान्त गुप्ता

श्रीमती इन्दिरा गुप्ता

बोध क्रम ४३ प्रकाश क्रम १२

ईश महिमा

लेखक

वीरेन्द्र गुप्तः

निःशुल्क भेंट कर्त्ता–

श्री वीरकान्त जी

ललित मैडिकल हाल

बाजार गंज, मुरादाबाद

सृष्टयाब्द १;९७,३८,१३,१०४
मानव सृष्टि वेद काल १,९६,०८,५३,१०४
दयानन्दाब्द १८०
विक्रम सम्वत् २०६१ सन् २००४ ई०

प्रकाशक :—

वेद संस्थान

मण्डी चौक, मुरादाबाद

प्राप्ति स्थान :—

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर

मण्डी चौक, मुरादाबाद

परिवर्धित :—

द्वितीय संस्करण २०००

मूल्य :—

पठन—पाठन

आगामी अन्य प्रकाशन हेतु सहयोग

सुलेख :—

यूनिक कम्प्यूटर्स

गोलघर, मण्डी चौक, मुरादाबाद

दूरभाष :— २३१७५०४

वेद संस्थान

की साहित्य सेवा

वेद संस्थान की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०४८ रविवार १७ मार्च १९९१ को हुई।

वेद संस्थान का लक्ष्य है—सद्साहित्य अल्पमूल्य पर अथवा नि:शुल्क आपके पास तक पहुँचता रहे। हमने अब तक १—विनयामृत सिन्धु, २— अभिनन्दनीय व्यक्तित्व, ३— विवेकशील बच्चे, ४— जन्म दिवस, ५— योग परिणति, ६— करवा चौथ, ७— दैनिक पंच महायज्ञ, ८— गोधन, ९— पर्वमाला, १०— दाम्पत्य दिवस, ११— छलकपट और वास्तविकता, १२— ईशं महिमा, १३— मन की अपार शक्ति, १४— रत्न माला, १५— नयन भास्कर, १६— युधिष्ठिर यज्ञ गीता, १७— यज्ञों का महत्व, १८— वेद—उद्गीत प्रस्तुत की हैं। यह प्रस्तुति वेद संस्थान की और सहयोग दानी महानुभावों का है। इस सहयोग और उदार भाव के लिये वेद संस्थान उनका आभारी है।

हमें आशा है कि आप वेद संस्थान को पूर्ण सहयोग देकर नूतन साहित्य प्रकाशित करने का अवसर अवश्य प्रदान करते रहेंगे।

विजय कुमार
प्रकाशन सचिव

अम्बरीष कुमार
सचिव

वेद संस्थान
मण्डी चौक, मुरादाबाद

लेखक परिचय

नाम — वीरेन्द्र गुप्तः
जन्म — श्रावण शुक्ल ६ सम्वत्
१९८४ बुद्धवार
३ अगस्त, १९२७ ई०,
मुरादाबाद
सम्प्रति — व्यवसाय

सम्मान :

१— १४ सितम्बर १९८२ राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रसार समिति।
२— ३ अक्टूबर १९८२ आर्यसमाज मण्डी बाँस, मुरादाबाद।
३— १४ सितम्बर १९८८ श्री यशपाल सिंह स्मृति साहित्य शोधपीठ, मुरादाबाद।
४— ३० सितम्बर १९८८ अहिवरण सम्मान पुरालेखन केन्द्र, मुरादाबाद।
५— २ जनवरी १९९२ साहू शिवशक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति, मुरादाबाद द्वारा वैदिक साहित्य सम्मान।
६— ७ जनवरी १९९६ अभिनन्दन समिति द्वारा नागरिक अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ तथा सामूहिक अभिनन्दन पत्र।
७— ६ मार्च १९९९ अखिल भारतीय माथुर वैश्य महासभा द्वारा ग्वालियर सम्मेलन में (साहित्य) समाज शिरोमणी सम्मान।
८— ९ मई १९९९ विराट आर्य सम्मेलन पश्चिमी उत्तर प्रदेश मेरठ आर्य शिरोमणी सम्मान।
९— २६ जनवरी २००० माथुर वैश्य मण्डल, मुरादाबाद द्वारा साहित्यक शताब्दी पुरुष सम्मान।
१०— २५ फरवरी २००० (अमृत महोत्सव) के अवसर पर संस्कार भारती, मुरादाबाद द्वारा अभिनन्दन।
११— १५ सितम्बर २००० (राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्त्राब्दी सम्मान) सहस्त्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन नई देहली के द्वारा। सँयुक्त राष्ट्र संघ (यूनैस्को) आदि से सम्बध।
१२— १७ सितम्बर २००० "ज्ञान मन्दिर पुस्तकालय, रामपुर" हिन्दी दिवस पर सम्मान।

उल्लेख :

१— हिन्दी साहित्य का इतिहास ले० डा० आलोक रस्तौगी एवं श्री शरण, देहली १९८८।
२— "आर्य समाज के प्रखरव्यक्तित्व" दिव्य पब्लिकेशन केसरगंज अजमेर १९८९।
३— "आर्य लेखक कोष" दयानन्द अध्ययन संस्थान जयपुर १९९१।
४— एशिया—पैसिफिक "हू इज़ हू" (खण्ड ३) देहली २०००।

प्रकाशित कृतियाँ :

१— इच्छानुसार सन्तान, २— लौकिट (उपन्यास), ३— पुत्र प्राप्ति का साधन, ४— पाणिग्रहण संस्कार विधि, ५— How to beget a son,(अनुवादित) ६— सीमित परिवार, ७— बोध रात्रि, ८— धार्मिक चर्चा, ९— कर्म चर्चा, १०— सस्ती पूजा, ११— वेद में क्या है? १२— गर्भावस्था की उपासना, १३— वेद की चार शक्तियाँ, १४— कामनाओं की पूर्ति कैसे, १५— नींव के पत्थर, १६— यज्ञों का महत्व, १७— ज्ञान दीप, १८— The light of learning (अनुवादित) १९— दैनिक पंच महायज्ञ, २०— दिव्य दर्शन, २१— दस नियम, २२— पतन क्यों होता है, २३— विवेक कब जागता है, २४— ज्ञान कर्म उपासना, २५— वेद दर्शन, २६— वेदांग परिचय, २७— संस्कार, २८— निराकार साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन, २९— मनुर्भव, ३०— अदीनास्याम, ३१— गायत्री साधन, ३२— नव सम्वत्, ३३— आनुषक (कहानियाँ), ३४— विवेकशील बच्चे, ३५— जन्म दिवस, ३६— करवा चौथ, ३७— योग परिणति, ३८— पर्वमाला, ३९— दाम्पत्यदिवस, ४०— छलकपट और वास्तविकता, ४१— श्रद्धा सुमन, ४२— माथुर वैश्यों का उद्गम, ४३— ईश महिमा, ४४— मन की अपार शक्ति, ४५— नयन भास्कर, ४६— युधिष्ठिर—यक्ष गीता, ४७— वेद उद्गीत।

सूचक

।। ओ३म्।।

स्वस्ति पंथाम् अनुचरेम्।।

ऋग्वेद ५/१५/१५

हम कल्याण के मार्ग का अनुसरण करें।

मन्थन

कौन सी सृष्टि प्रथम है और कौन सी अन्तिम होगी। इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह तो प्रवाह से अनादि है। यह निश्चित है प्रत्येक सृष्टि में परमेश्वर का पूर्ण ज्ञान चारो ऋषियों द्वारा चारो वेदों का दिया गया था, दिया गया है और दिया जाता रहेगा। परमेश्वर की सृष्टि परिपूर्ण है इसमें किसी प्रकार की कोई कमी नहीं। आगे की किसी भी सृष्टि में कोई नवीनता अथवा अधिकता के होने का प्रश्न ही नहीं उठता। उसकी हर बात परिपूर्ण है। 'पूर्वमकल्पयत्' यह सृष्टि पूर्व कल्प में जैसी बनाई थी वैसी ही अब बनाई है और आगे भी ऐसी ही बनेगी।

एक पत्र श्री नन्दकुमार चौधरी का बिहार से आया। उन्होंने लिखा ''आपकी पुस्तक 'इच्छानुसार सन्तान एवं पुत्र प्राप्ति' का साधन में आपने जिक्र किया है कि गर्भधान के लिये मर्द – औरत का विपरीत स्वर चलना जरूरी है, अन्यथा सम–स्वर में गर्भधान नहीं होगा। हम कुछ चिकित्सकों के बीच इस सम्बन्ध में मत मतान्तर हो रहा है। कृपया सूचित करें किस प्रमाणिक पुस्तक के आधार पर इन बातों की पुष्टि की जाय।'' उनको उत्तर दे दिया गया। विद्युत की दो धारायें चलती हैं; १– नैगेंटिव, २– पॉजिटिव। इन दोनों धाराओं के मिलने से बिजली के सभी संयत्र काम करने लगते हैं। नैगेटिव – नैगेटिव और पॉजिटिव – पॉजिटिव तारों के मिलाने से कोई भी संयत्र नहीं चलेगा। वह तभी चलेगा जब

नैगेटिव और पॉजिटिव तारों को मिलाया जाये। हमने इसी क्रिया को मनुष्यों पर लगा दिया है, स्त्री—पुरुष दोनों में समान स्वर होने पर गर्भ स्थित नहीं होगा। यह किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा है, स्वयं का विचार है और परीक्षा में सत्य पाया गया है।

इस पुस्तक में भी कुछ सन्दर्भ ऐसे आ सकते हैं जिन्हें मैंने किसी ग्रन्थ में नहीं देखा हो, परन्तु उन विषयों को ध्यानावस्था में बैठ कर मनन और चिन्तन करके उन्हें लिखने का विचार बनाया।

सृष्टि रचना क्रम में वैज्ञानिक कहते हैं — पहले एक सैल वाले अमीबा बने और आगे चलकर वह अमीबा दो, तीन और चार सैल के ऊतक में बदलते चले गये। कुछ का कथन है कि पहले जल में मछली बनी कालान्तर में वह मछली बन्दर बन गई और उसके पश्चात् बन्दर की दुम घिसकर मानव बन गया।

यह दोनों प्रकार कलम की संस्कृति में आते हैं। यहाँ यह विचारना होगा कि कलम की संस्कृति स्वतः नहीं होती, उसके लिये सदैव कलम ही लगानी होती है। जिस प्रकार गधी और घोड़े के मेल से खच्चर पैदा होता है। खच्चर स्वतः पैदा नहीं होता। गधी और घोड़े में समानता है इस कारण कलम की संस्कृति खच्चर बना लेते हैं। मछली जल जन्तु है, बन्दर वृक्षों का और मानव भूमि का वासी है। इन तीनों में कोई समानता नहीं और खच्चर की तरह इनमें से कोई भी कलम की संस्कृति नहीं। यह तीनों आज भी स्वतः अपने—अपने रूप में जन्म ले रहे हैं। इसी बात को हम फलों में भी देखते हैं। काशीफल और तरबूज दोनों बेल की संस्कृति में हैं और पूर्ण समानता है इसलिये दोनों की कलम मिलाकर पीला तरबूज बना लिया जाता है, वह स्वतः पैदा नहीं होता। बेल की संस्कृति होते हुए भी यह कलम ककड़ी या खीरे में नहीं लगाई जा सकती इसका कारण है, तरबूज और काशीफल के सामन ककड़ी और खीरा नहीं होता इसलिये तरबूज या काशीफल की कलम

ककड़ी या खीरे के साथ नहीं लगाई जा सकती। आम देसी ही होता है। उसमें कलम लगाकर कलमी, लंगड़ा, दशहरी, चौंसा आदि आम बनाये जाते हैं। जो स्वत: पैदा नहीं होते। वृक्ष की संस्कृति होते हुए भी आम की कलम अमरूद में या अन्य किसी वृक्ष के साथ नहीं लगाई जाती। कलम! संस्कृति और स्वभाव की समानता पर ही लगाई जाती है। दर्शन ने कहा 'रुपाणाम् रूपम्' रूप से ही रूप की उत्पत्ति होती है। एक रूप से दूसरे रूप की उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

सृष्टि रचना में पूर्वोक्त प्रकार सही नहीं। परमात्मा ने, कही जाने वाली सम्पूर्ण चौरासी लाख योनियों की समस्त आकृतियाँ आदि सृष्टि के प्रारम्भ में ही रचकर तैयार कर दी थीं। उसकी रचना में कोई नई आकृति नहीं और ना ही कोई आकृति न्यून होता है। उसकी रचना समस्त सृष्टियों में एक समान ही होती है। वैज्ञानिक विकासवाद को लेकर चलता है परन्तु वेद का विज्ञान सर्वत्र परिपूर्णता के वाद को लेकर चलता है। हम क्रमिक और मन्द गति से विकास की प्रक्रिया पर आगे विचार करेंगे।

नोबेल पुरुस्कार विजेता 'मैटेलिक' कहते हैं— आश्चर्य यह है कि हम प्रागैतिहासिक काल के पूर्वजों ने जिनके विषय में यह कल्पना की जाती है कि वे घोर अज्ञान की भयंकर अवस्था में थे, कहाँ से वह असाधारण अर्न्तज्ञान प्राप्त कर लिया, जिसको हम फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं? इससे बढ़कर सामाजिक विकास वाद की असत्यता का और क्या प्रमाण हो सकता है।

अमरीका के सुप्रसिद्ध विचारक 'थोरियो' कहते हैं— वेदों के उपदेश सरल, देश वा जाति विशेष के इतिहास से रहित और सार्वभौम हैं तथा उनमें ईश्वर विषयक युक्तियुक्त विचार दिये गये हैं।

फ्रांस देशीय 'जैकोलियंदु' कहते हैं— कितनी आश्चर्य जनक सच्चाई है, हिन्दुओं का ईश्वरीय ज्ञान वेद ही, जो लोकों की

मन्द और क्रमिक रचना बताता है, सब 'ईश्वरीय ज्ञानों' में एक ऐसा है, जिसकी कल्पनाऐं आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्णरूप से मिलती हैं।

मि० डब्लू० डी० ब्राउन ने कहा है— वैदिक धर्म केवल एक ईश्वर का प्रतिपादन करता है। यह एक पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है। जहाँ धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं। यहाँ धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान और तत्वज्ञान वा फिलासफी पर आश्रित हैं।

लेखक और पाठक का अटूट सम्बन्ध है। पाठक मेरी प्रेरणा के स्रोत हैं। वह समय—समय पर अपने सुझाव भेजकर मेरी कलम को प्रोत्साहित कर आगे बढ़ने के लिये मार्ग प्रशस्त करते ही रहते हैं, और मेरी कलम सहसा उसी ओर चलने लगती है। इसी के फलस्वरूप मेरा विचार, मन्थन, स्वाध्याय आगे से आगे बढ़ता चला जाता है। जिसका परिणाम होता है, नई रचना का सूत्रपात होकर पाठकों के कर कमलों तक पहुँच जाना।

अनेक बार यह प्रश्न सामने आते रहे कि परमात्मा क्या है? यह सृष्टि कैसे बनी? किसने बनाई? संसार में सबसे पहले कौन आया? कहाँ आया? कितना समय इसे बने हो गया? इसी प्रकार के अनेक प्रश्न सामने आते रहे। इन सभी प्रश्नों के समाधान हेतु मैंने 'ईश महिमा' के नाम से इस पुस्तक की रचना का विचार बनाया। मैंने पूरा प्रयत्न किया है कि उक्त विषय को सरल और सार्थक रूप में प्रस्तुत कर सकूँ। मैंने इस पुस्तक में सार रूप में ही लिखा है और निरर्थक कलेवर बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया।

पुस्तक का विषय गम्भीर अवश्य है परन्तु इससे भी अधिक यह आवश्यक है कि विषय जनसाधारण तक पहुँचे, और वह इस विषयक समस्त मिथ्या धारणाओं को तिलाञ्जली देकर वास्तविक तथ्य को समझने में समर्थ हो सकें। यही हमारा मुख्य मन्तव्य है।

निराकार उसे कहते हैं— जिसका कोई आकार न हो, जिसका कोई आकार नहीं हो तो वह दीखता नहीं, न दीखने से भी

उसे निराकार कहते हैं। साकार उसे कहते हैं जिसका कोई आकार होता है, जिसका कोई आकार होता है वह दीखता है, दीखने के कारण ही उसे साकार कहते हैं। निराकार में व्यापकता और सर्वज्ञता विद्यमान रहती है। साकार में सीमितपन और अल्पज्ञता विद्यमान रहती है। जो निराकार है वह सब जगह व्यापक है और सब संसार उसमें व्याप्य है। जो साकार है वह एक देशीय है वह न सब में व्यापक है और न सब उसमें व्याप्य है। जो व्यापक है वह अल्पज्ञ नहीं हो सकता और जो अल्पज्ञ है वह कभी व्यापक नहीं हो सकता। जो निराकार है वह कभी साकार नहीं हो सकता और जो साकार है वह कभी निराकार नहीं हो सकता। जो निराकार है वह जन्म—मरण के बन्धन से दूर रहता है और जो साकार है वह जन्म—मरण के चक्र में बँधा रहता है। और जो जन्म—मरण के साथ जुड़ा है उसी की जयन्तियाँ मनाई जाती हैं और उन्हीं की प्रतिमा बनती है। जो जन्म—मरण से दूर है उसकी कोई जयन्ती नहीं मनाई जाती और न कोई उसकी प्रतिमा बन सकती है। जो निराकार है वह बाहर, भीतर, आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे सब ओर देख सकता है परन्तु जो साकार है वह और तो क्या अपनी पीठ पीछे हो रहे चक्र—कुचक्र को न देख सकता है और न जान सकता है। निराकार में शरीर न होने से लिंग भेद नहीं होता और साकार में शरीर होने से ही लिंग भेद होता है।

वैज्ञानिक राकेट, यान अथवा विध्वंसक अस्त्रादि बना सकता है परन्तु वैज्ञानिक स्वयं राकेट आदि नहीं बन सकता। मेहमार, कोठी बंगला; दर्जी, कोट कमीज आदि; कलाकार, पाषाण प्रतिमा आदि; स्वर्णकार, आभूषण आदि बना सकते हैं। परन्तु स्वयं वह वस्तु नहीं बन सकते। तो फिर परब्रह्म परमेश्वर 'सृष्टा होकर कैसे सृष्टि' बन सकता है। महामुनि कपिल सांख्य दर्शन ६/४९ में लिखते हैं।

प्रकाशतस्तस्ति द्वौकर्मकर्तृ विरोधः।

अपने प्रकाश से अद्वैत की सिद्धि मानने पर 'कर्म' और 'कर्त्ता' का विरोध होगा। अर्थात् वही प्रकाश्य और वही प्रकाशक होने से आप ही 'कर्म' और आप ही 'कर्त्ता' इस प्रकार विरुद्ध धर्मों के मानने से कर्म कर्तृ विरोध होगा। इस प्रकार परमेश्वर कभी भी शरीर धारण कर अपना अवमूल्यन नहीं कराता वह शरीर रूप में कभी उपस्थित नहीं होता। अर्थात् उसका कभी अवतार नहीं होता।

सनातन धर्म सभा के मुरादाबाद कार्यक्रम पर १९३३ ई० में श्री गिरधर शर्मा महामहोपाध्याय जयपुर निवासी आये थे। सनातन धर्म सभा की ओर से उनके सम्मान में श्री गोपाल दत्त पन्त साहित्याचार्य, राजकीय माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक ने संस्कृत भाषा में एक सम्मान पत्र छापा था। महन्त कृष्णानन्द जी ने कहा 'सनातन धर्म' शब्द नहीं बनता, यह शब्द ही गलत है। 'सनातन धर्म' में समास नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सामर्थ्य नहीं है। इस प्रकार 'सनातन' तो सदा से रहने वाला है परन्तु 'धर्म' परिस्थिति जन्य होता है। इस प्रकार सनातन धर्म' शब्द ही गलत है। वास्तव में 'धर्म' तो एक ही होता है। अन्य शेष 'मत' ही कहे जाते हैं। मत व्यक्ति विशेष के द्वारा स्थापित किये जाते हैं। ईश्वर प्रणीत वेद पर आधारित 'वैदिक धर्म' ही है।

लेखन की विधायें अनेक हैं। विधायें लेखक के विचारों से बनती हैं। कोई केवल मनोरंजन के लिये ही लिखते हैं, उन्हें यह कोई विचार नहीं होता कि क्या लिखना चाहिए क्या नहीं? इसी को व्यसन का लेखन कहते हैं। कोई तालियों की गड़गड़ाहट सुनने के लिये लिखते हैं, कोई अपने किसी लक्ष्य को लेकर लिखते हैं, कोई मूलभूत परम शाश्वत सिद्धान्तों के सत्य स्वरूप को लक्षित करके लिखते हैं। कोई सबको प्रसन्न करने के लिये ही लिखते हैं। इसी प्रकार लिखने की अनेक विधायें होती हैं।

महाभारत का एक प्रसंग। जिस समय योगीराज श्रीकृष्ण कौरव और पाण्डवों के युद्ध को टालने के लिये संधि प्रस्ताव लेकर कौरव सभा में उपस्थित हुये। इस प्रसंग को तालियों की गड़गड़ाहट सुनने की विधा के एक लेखक लिखते हैं, जब दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का आदेश दिया, उस समय श्री कृष्ण के मुख से उक्त लेखक ने कहलवाया, दुर्योधन तू मुझे बन्दी बनाना चाहता है तो पहले इस आकाश को बन्दी बना, वायु को बन्दी बना, सूर्य को बन्दी बना इसके पश्चात् तू मुझे बन्दी बना सकता है। इस नई बात को सुनकर अन्जान ज्ञानी और इस प्रसंग को न पढ़ने वाले व्यक्तियों ने प्रसन्न होकर तालियाँ बजायीं। बस यहीं लेखक का मन्तव्य पूरा हो गया। जबकि वास्तविकता कुछ और है। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को बन्दी बनाने का कोई आदेश नहीं दिया, केवल गुप्त संकेत ही दिया था। जिसे श्रीकृष्ण समझ गये और उन्होंने अपने योग की सम्मोहन शक्ति का प्रयोग कर धृतराष्ट्र अन्धे को ऐसा अनुभव करा दिया कि सात्यकि के नेतृत्व में सेना के अश्वों की हुँकार सुनाई देने लगी, उसी समय धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को फटकारते हुए कहा – यह क्या है? इसे सुनते ही दुर्योधन की दृष्टि धृतराष्ट्र की ओर घूमी और श्रीकृष्ण अवसर पाकर उसी समय बाहर आ गये। पाठक गण सत्यता को स्वयं विचार लें और लेखन की विधाओं को भी जान लें। ••

परिकल्पना

संसार में जितने भी मतमान्तर हैं उन सभी ने भगवान गॉड़ खुदा–अल्लाह आदि उपाधियों से अलंकृत समर्थवान शक्ति को, मानव के सदृश्य ही परिकल्पना की है। ईसाईयों का गॉड़ चौथे आसमान पर विराजमान है, इस्लामिकों का खुदा अल्लाह सातवें

आसमान का निवासी है, पौराणिक बन्धु भगवान विष्णु का क्षीरसागर में शेषनाग पर आसीन होना स्वीकार करते हैं। जैन और बौद्ध भगवान नाम की किसी भी प्रकार की कल्पना नहीं करते वह मानते हैं कि जब मानव सिद्ध शिला पर पहुँच जाता है तो वही भगवान बन जाता है। सिक्ख बन्धु केवल गुरु नानक देव और गुरुग्रन्थ साहब को ही सब कुछ मानते हैं। नास्तिक भी किसी प्रकार के भगवान को स्वीकार नहीं करते और मानव को ही सब कुछ मानते हैं। इस प्रकार संसार भर के सभी मताबलम्बियों ने किसी न किसी रूप में भगवान की मानव समान ही परिकल्पना की है।

इन्हीं तथ्यों को निहारते, देखते, मनन करते हुए एक दार्शनिक ने कहा था कि यदि इन पशु पक्षियों में से किसी को भी चित्रकारी का ज्ञान होता तो वह भी अपने समान चित्र का निर्माण कर भगवान की परिकल्पना कर सकते थे।

वेद ने मनुष्यवत् परमात्मा की कल्पना कभी नहीं की। परमात्मा! मनुष्य की सरलतम उपासना वृत्ति से परिचित है वह जानता है कि मुनष्य अपनी आकृति के अनुसार परमात्मा की कल्पना कर परमात्मा के वास्तविक स्वरूप से बहुत दूर चला जायगा। तभी तो उसने वेद में कहा – "स: पर्यगात्" जिसका अर्थ होता है कि वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण अर्थात् व्यापक है।

"अकायम्" वह कभी शरीर अर्थात् अवतार नहीं धारण करता वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देह धारण कभी नहीं करता। एक और स्थान पर कहा "न तस्य प्रतिमा अस्ति" उस परमात्मा की कोई प्रतिमा ही नहीं, प्रतिमा आकार से बनती है, आकार शरीर का होता है। जब शरीर ही नहीं तो आकार कैसा और जब आकार नहीं तो प्रतिमा कैसी। इस प्रकार वेद ने मनुष्यवत परमात्मा की कल्पना का निषेध किया है।

अब्र प्रश्न उठता है कि वह है क्या? वह है एक अति सूक्ष्म और अति महान 'परमतत्व' जो सर्वत्र फैला हुआ है, जो सबमें परिपूर्ण है व्यापक है, वह सारे में समाया हुआ है, उससे कोई भी स्थान खाली नहीं, वह समस्त सामर्थ्यों से युक्त है। इसी परमतत्व को ही परमेश्वर, जगदीश्वर आदि नामों से पुकार जाता है। ●●

ईश्वर

'ब्रह्म' जिसका निज नाम ओ३म् है उसको प्रभु, ईश, जगदीश, परमेश्वर, ईश्वर आदि अनेक नामों से जाना जाता है। गुण, कर्म और स्थान भेद से और भी अनेकानेक नामों से पुकारा जाता है।

'ब्रह्म' एक है उसके समान दूसरा कोई नहीं, न उसके माता–पिता हैं, न कोई भाई बन्धु वह स्वयं एक ही 'स्वयंभू' है, जिसे किसी ने नहीं बनाया, वह एक परम तत्व है। उसी परम तत्व को 'सच्चिदानन्द' भी कहते हैं, अर्थात् वह 'सत्' है, शाश्वत है, सदैव रहने वाला है; 'चित्त' जो चेतन है, स्वचलित है, स्वयं गतिमान है और 'आनन्द' अर्थात् प्रकृति जगत् के समस्त सुख जिसमें विद्यमान हैं, वही सम्पूर्ण आनन्दों का भण्डार है, अर्थात् ब्रह्म त्रिगुणात्मक है।

जिसका कोई आकार नहीं, इसलिये उसकी कोई प्रतिमा भी नहीं। वेद ने भी कहा 'प्रतिमा न अस्ति'। जन्म के पश्चात् ही आकार प्राप्त होता है और आकारवान की ही प्रतिमा होती है। जो जन्मा आकारवान है उसकी मृत्यु सुनिश्चित होती है। इस कारण वह 'निराकार' है।

सृष्टि की रचना, सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि समस्त ब्रह्माण्ड की रचना करने से और उन सबको नियमांनुसार गति देने से वह

'सर्वशक्तिमान' है। सर्वशक्तिमानता का यह अर्थ नहीं कि वह अजन्मा की सर्वोच्च पदवी को त्याग कर जन्म मरण के चक्र में पड़कर अपने आपको गौरवहीन बनाये, अथवा अपने बनाये हुए नियमों का स्वयं उल्लंघन करे? यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वह स्त्रष्टा की पदवी को छोड़कर सृष्टि बने। यह अवमूल्यन है। सर्वशक्तिमानता नहीं।

पापियों को पक्षपात रहित होकर न्यायपूर्वक समुचित दण्ड देने से 'न्यायकारी' है। दण्डित आत्मा से समस्त उपभोगी पदार्थों को छीन कर काल कोठरी में बन्द नहीं करता। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, शीतल समीर, मधुर जल आदि समस्त पदार्थ आदि सब को देता है, उसी प्रकार दण्डित आत्मा को भी देता है। किलोल आनन्द और उल्लास से भी वन्चित नहीं रखता इसीलिये ईश 'दयालु' है।

शरीर रहित होने से निराकार है और जन्म साकार का होता है, निराकार का नहीं। इसीलिये प्रभु जन्म, मरण, जरावस्था आदि से दूर 'अजन्मा' है।

सब में रमा हुआ होने से दूर तक फैला हुआ है और इतना पास भी है कि वह हृदय में विराजमान है। इसलिये परमेश्वर 'अनन्त' है।

विकार, शरीर धारण से होता है और जब प्रभु अजन्मा है तो उसमें कोई विकार ही नहीं, इसलिये अखण्ड और अनन्त होने से 'निर्विकार' है।

जो अजन्मा, अनन्त निर्विकार हो और जिसका आदि अन्त न हो तो वही'अनादि' होता है।

जिसके समान कोई न हो, जिसकी तुलना कोई न कर सके, जिसकी शक्ति, सामर्थ्य में कोई बराबरी न कर सके, और जिसके अनन्त भण्डार हैं वही 'अनुपम' है।

मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जलचर, नभचर, वृक्ष, पौधे, लता, वनस्पति, पर्वत, आकाश, भूमण्डल आदि सब का आधार परमेश्वर ही है, इसी लिये उसको 'सर्वाधार' कहते हैं।

सबका आधार होने से ही सबका ईश्वर है, सबके भजने योग्य है, सबक़ा उपास्य देव होने से 'सर्वेश्वर' है।

वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण होके व्यापक है, जिस प्रकार दूध में घी विद्यमान होते हुए भी नहीं दिखता जब तक उसे जमाकर बिलोया न जाय, उसी प्रकार सब में रमा हुआ होने पर भी बिना योग साधन के ईश का साक्षात्कार अथवा उसकी प्राप्ति नहीं होती। वह सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म है और महान से भी अधिक महान है। सूक्ष्म होने से सबके अन्दर विराजमान है और महान से भी महान होने के कारण वह इतना महान है कि सांसारिक समस्त पदार्थ, समस्त संसार, भूमण्डल, नक्षत्र, लोक, लोकान्तर आदि सभी कुछ उसके भीतर समाहित हैं। इसी लिये ईश 'सर्वव्यापक' है। सर्वव्यापक का मूल अर्थ है कि वह ब्रह्म प्रकृति के कण—कण में व्यापक है, प्रत्येक कण में उसकी सत्ता विद्यमान है। कण—कण में व्यापक होने से कण—कण अथवा कण समूह पाषाण प्रतिमा, मूर्ति आदि कभी ब्रह्म, ईश्वर, भगवान नहीं हो सकती। उसमें ब्रह्म विद्यमान है परन्तु वह ब्रह्म नहीं हो सकती। जिस प्रकार भट्टी में सुलगते हुये कोयले अंगारा बनकर अत्यन्त तेज रूप धारण कर लेते हैं अर्थात् अग्नि ही बन जाते हैं। परन्तु वह अंगारे भट्टी से निकालकर बाहर रखने पर उसके पास एक अन्य कोयला रख देने से वह पास में रखे कोयले को अपनी अग्नि प्रदान कर जला नहीं सकता, वरन् स्वयं शान्त होने लगेगा। उसमें अग्नि विद्यमान है परन्तु वह अपनी अग्नि दूसरे को प्रदान नहीं कर सकता, इस कारण उसे अग्नि नहीं कह सकते।

अधिक सूक्ष्म होने से वह सबके हृदयों में विराजमान है। जब मानव कोई भी अनुचित पाप कर्म करने की सोचता है तो उसे

जो भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है वह हृदय में विराजे हुए अन्तर्यामी ईश की ओर से संकेत रूप में पाप की ओर से विमुख होने के लिये आदेश होता है। यही प्रभु के 'सर्वान्तर्यामी' होने का प्रत्यक्ष स्वरूप है।

जिस ईश का जन्म ही नहीं होता तो उसे जरावस्था कैसे व्यापेगी इसीलिये जरावस्था से दूर 'अजर' है।

जो कभी नहीं मरता और सदैव एक रूप रहता है वह प्रभु 'अमर' है।

भय सदैव बराबर वाले से या बड़े से होता है, परमेश्वर के न कोई समान है और न कोई बड़ा, इसलिये वह भय रहित 'अभय' है।

जो सदैव रहने वाला है वही 'नित्य' होता है।

जो सदैव निर्मल है, अविद्यादि, जन्म–मरण, हर्ष–शोक, क्षुधा, तृषादि दोषों से रहित है। शुद्ध की उपासना करने से शुद्ध होता है, मलिन की उपासना करने से मलिनता आती है। इसी प्रकार जड़ उपासना से बुद्धि में जड़ता आती है और चेतन की उपासना करने से चेतनता आती है और विवेक जागता है। परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता इसी कारण पाप रहित होने से वह 'पवित्र' है।

जगत के समस्त जीवों की और समस्त पदार्थों की उत्पत्ति करने की अनन्त सामर्थ्य जगदीश्वर में विद्यमान होने से वह 'सृष्टिकर्त्ता' है। ईश्वर स्वभाव से शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। वह बिना शरीर धारण किये ही सब कुछ करने में समर्थ हैं। ●●

जीव

आत्मा को जीवात्मा और जीव के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। इसके दो गुण हैं। १–सत्, २– चित्त, अर्थात् शाश्वत

सदैव रहने वाला होने से 'सत्' और चेतन, गतिवान होने से 'चित्त' है। जो सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है। इसकी सूक्ष्मता पर प्रकाश डालते हुए योगाचार्यों ने कहा कि मानवी बाल की नोक के ६०लाख भाग किये जायें और उसके एक भाग के अनुमान का अतिसूक्ष्म जीवात्मा के स्वरूप को माना है, अर्थात् जीवात्मा सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है।

प्रत्येक वस्तु में गुण और दोष दोनों ही विद्यमान होते हैं। गुण दो प्रकार के होते हैं, एक स्वभाविक गुण जो सदैव साथ रहते हैं। दूसरा नैमित्तिक गुण जो निमित्त मिलने पर उत्पन्न होते हैं और निमित्त छूट जाने पर वह गुण भी समाप्त हो जाते हैं।

'ज्ञान' अर्थात् अनुभव करना और 'प्रयत्न' उस अनुभव को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्न शील रहना और 'कर्मफल भोग' अर्थात् अच्छे अथवा बुरे कर्मफलों को भोगना। यह तीनों आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। तभी तो प्रत्येक बच्चा हर बात को जानना चाहता है और उसके लिये प्रयत्न भी करता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, निरंकुशता आदि नैमित्तिक गुण हैं, अर्थात् शरीर होने पर यह गुण उत्पन्न होते हैं और शरीर न होने पर समाप्त भी हो जाते हैं। स्वभाव और गुण यह दोनों अलग अलग हैं। परन्तु दीखते दोनों एक समान हैं, इनमें किन्चित मात्र का ही अन्तर होता है। आत्मा शुद्ध, बुद्ध मुक्त के स्वभाव से युक्त है, अर्थात् आत्मा शुद्ध रहना चाहती है वह ज्ञानवान विवेक युक्त होना चाहती है और आवागमन के चक्र से दूर होकर मुक्ति की इच्छा को रखने वाली है। आत्मा में कुछ दोष भी विद्यमान हैं, वे हैं — अल्पज्ञता, विस्मृति, अविद्या और आनन्दरहितता। जीवात्मा शरीर धारण करने पर ही 'कर्मक' होता है अर्थात् कर्म कर सकता है और शरीर रहित होने पर 'अकर्मक' बन जाता है अर्थात् वह कोई कर्म नहीं कर सकता।

कर्म न करने से ही विस्मृति बन जाती है, विस्मृति से अविद्यादि दोषों से युक्त होकर आत्मा अल्पज्ञ और आनन्द रहित

होकर आवागमन के चक्र में घिरी ही रहती है। शरीर से सम्बन्ध होने की विशेषता के कारण इसकी 'जीव' संज्ञा है और शरीर से सम्बन्ध न रहने पर आत्मा कहलाता है। 'जीव' की कार्य सिद्धि 'अहंकार रूप कर्त्ता' अर्थात् 'स्वकर्म' के 'अधीन' होती है, ईश्वराधीन नहीं। इस विषय में कोई भी प्रमाण उपलब्ध नहीं होता कि जीव ईश्वराधीन कार्य करता है। इस विषय में भर्तृहरि कहते हैं "हम देवताओं को नमन क्यों करें। वह कठोर विधि के हाथों बन्धे हैं, तो विधि को वन्दना करनी चाहिये, किन्तु विधि भी हमारे नियम कर्म के अनुसार फल देती है। यदि फल कर्मों के अधीन है तो फिर क्या देवताओं से क्या विधि से प्रयोजन, इसलिये हम इन कर्मों को ही नमन करते हैं जिन पर विधि का कोई प्रभाव नहीं है अर्थात् कर्म स्वतन्त्र है। इसलिये 'स्वकर्म' ही प्रधान हैं उसी के अनुसार ही सब जीव फल भोगते हैं।

मानव देह में जीवात्मा के निवास का स्थान हृदयाकाश है। यह हृदयाकाश, हृदय के मध्य में जो बाल की नोक के समान बारीक छिद्र है, उसे ही हृदयाकाश कहते हैं। उसी स्थान पर जीवात्मा निवास करता है और वहीं से ही देह की सारी इन्द्रियों का संचालन करता हुआ सभी कर्म अकर्मों के फलों का संचय करता रहता है। जीवात्मा में भी परमात्मा के परमतत्व का वास है और योगियों को इसी हृदयाकाश में ही जीव और ईश के मिलन का साक्षात्कार होकर जीव को परमानन्द प्राप्त होता है। ००

प्रकृति

प्रकृति में केवल एक ही गुण है 'सत'। सदैव विद्यमान रहने के कारण वह 'सत' है। प्रकृति में चित्त और आनन्द गुण नहीं। चेतन गुण जीवात्मा, चेतन रहित प्रकृति को केवल इसी कारण

संचित कर सुख का अनुभव करता है कि वह कहीं जा नहीं सकती। दूसरे आनन्द रहित वस्तु का संचय, सुख का तो अनुभव करा सकता है परन्तु आनन्द नहीं दे सकता।

ईश्वर, जीव और प्रकृति यह तीनों 'सत्' होने से अनादि हैं, सदैव से रहने वाले हैं, इनका कभी नाश नहीं होता और ना ही इन तीनों का किसी ने निर्माण किया। यह संसार भी त्रिगुणात्मक है सत् रजः, तम। ईश्वर का गुणं 'सत' जीव का गुण 'रजः' और प्रकृति का गुण 'तम' है। 'परमात्मा', जीव और जगत् का कारण 'प्रकृति' यह तीनों पदार्थ अनादि और नित्य हैं। जीव और ईश क्रम से अल्प, अनन्त, चेतन विज्ञानवान सदा विलक्षण, व्याप्य—व्यापक भाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्तमान हैं, वैसे ही जिस अव्यक्त परमाणु रूप कारण से कार्य रूप जगत होता है। वह भी अनादि और नित्य है, समस्त जीव पाप पुण्यात्मक कार्यों को करके उनके फलों को भोगते हैं और ईश्वर सब ओर से व्याप्त होता हुआ न्याय से पाप पुण्य के फल को देने से न्यायधीश के समान देखता है। जीवात्मा प्रकृति के शरीर का अधिष्ठाता बनकर शरीर के द्वारा प्रकृति के पदार्थों को भोगता है, किन्तु वह परमात्मा प्रकृति के पदार्थों में और स्वयं जीवात्मा ने जो शरीर धारण कर रखा है उसमें भी व्यापक होने के कारण उसके भोगने के प्रकारों को देखता है। (वेद मुनि)

प्रकृति के तंत्व पाँच हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इन पाँचों तत्वों के पाँच स्वभाविक गुण हैं, जिन्हें 'तनमात्रा' कहा जाता है। आकाश का 'शब्द', वायु का 'स्पर्श', अग्नि का 'रूप', जल का 'रस', पृथ्वी का 'गन्ध'। इन तनमात्राओं से ही तत्वों को पहचाना जाता है। प्रत्येक तत्व के मूल में उसका अपना

आधा भाग होता है और शेष आधे भाग में चारों तत्वों की विद्यमानता होती है। इन सबका आधा भाग परमतत्व से आच्छादित होता है। अर्थात् एक तत्व का एक गोलाकार चक्र बनायें, उसके बीच में से दो भाग कर दें। इन दोनों भागों में से एक भाग मूल तत्व का होता है। और शेष इसके आधे भाग में चारों तत्व समानता के साथ विद्यमान रहते हैं। और पूर्ण गोलाकार चक्र जिसमें पाँचों तत्व विद्यमान हैं उसके अन्दर आधे भाग के समान एक गोलाकार चक्र और बनायें। इस गोलाकार चक्र के सम्पूर्ण भाग का किया गया आधा भाग परमतत्व से आच्छादित होता है, जिसे ब्रह्म कहते हैं। इसी प्रकार पाँचों तत्वों को समझना चाहिए। आकाश से वायु की उत्पत्ति होती है, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। प्रलय भीं इसी प्रकार से होती है। प्रथम पृथ्वी जलमयी हो जाती है, जल को सूर्याग्नि भाप बनाकर उड़ा लेती है। सूर्याग्नि को वायु के विशाल भँवर बुझा देते हैं और सबसे अन्त में वायु के भँवर विशाल आकाश में विलीन होकर समाप्त हो जाते हैं। ●●

तत्व पाँच ही हैं

वेद्र विज्ञान के अनुसार तत्व पाँच हैं। कुछ अन्य मताबलम्बी एवं वैज्ञानिक चार तत्व मानते हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी इन तीन तत्वों को सभी स्वीकार करते हैं। आकाश और वायु इन दोनों तत्वों में से कोई आकाश को मानता है, कोई वायु को तथा कोई इन दोनों को एक ही मानता है, यह सही नहीं। प्रत्येक तत्व का एक मूल गुण होता है जिसे वेद की भाषा में तनमात्रा कहते हैं। आकाश की तनमात्रा "शब्द", वायु की तनमात्रा "स्पर्श" अग्नि की तनमात्रा

"रूप" जल की तनमात्रा "रस", पृथ्वी की तनमात्रा "गन्ध" होती है। यदि हम "आकाश" तत्व को नकारते हैं तो उसमें दो व्यवधान सामने आकर खड़े हो जायेंगे, १—ध्वनि की गूँज का समाप्त हो जाना, २— गमना—गमन में अवरोध का उत्पन्न हो जाना। यदि हम 'वायु' तत्व को नकारते हैं तो उस से भी दो व्यवधान सामने आकर खड़े हो जायेंगे। १— स्पर्श की अनुभूति, २— गति के अवरोध का हो जाना। आकाश तत्व के कारण ही अन्य ग्रहों की खोज के लिये सैटलाइट आकाश में भेजे जाते हैं। आकाश तत्व के अभाव में सैटलाइट का आकाश में भेजना कभी सम्भव नहीं हो सकता। इसी प्रकार 'वायु' तत्व के अभाव में हमारे कानों तक कोई भी शब्द अथवा ध्वनी नहीं आ सकती, और न किसी भी नक्षत्र आदि में स्वयं चक्राकार घूमने की गति बन सकती है। दूरभाष, दूरदर्शन, मोबाईल आदि यह सब वायु तत्व के विद्यमान रहने पर ही हमारे पास तक आते हैं। अधरंग, लकवा, फालिज, पक्षाघात जब किसी के शरीर में यह रोग प्रवेश कर जाता है तो उसे वात शून्य भी कहते हैं, अर्थात् उस अंग में से वायु तत्व समाप्त हो जाता है तभी तो उस अंग में स्पर्श और गति करना, दोनों ही समाप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार यह सत्य सिद्ध हो रहा है कि 'आकाश' तत्व और 'वायु' तत्व की भी विद्यमानता है।

सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास "इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में है और यह भी कि सबसे सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पाँच द्व्यणुक की

पृथ्वी अर्थात् तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथ्वी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिलाकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।''

वैज्ञानिक खोज मानव रचित उपकरणों द्वारा ही होती है, उनके अभाव में किसी भी वैज्ञानिक खोज का होना सम्भव नहीं है। परन्तु वेद विज्ञान की प्रत्येक खोज बिना किसी उपकरण के समाधि अवस्था में होती रहती है।

हमारा प्रश्न है कि संसार का कोई बड़े से बड़ा वैज्ञानिक किसी भी यन्त्र उपकरण आदि के द्वारा क्या यह बता सकता है कि मानव में शरीर की शुद्धि, मन की शुद्धि, विद्या की शुद्धि और बुद्धि की शुद्धि किस प्रकार हो सकती है। इसका समाधान कोई भी वैज्ञानिक नहीं कर सकता। हमारे मनीषि मनुजी महाराज वेद विज्ञान के द्वारा इसका समाधान देते हैं।

अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्धियति।
विद्या तपोभ्याम भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञनेन शुद्धियति।

वे कहते हैं – जल से 'शरीर' की शुद्धि होती है। सत्य बोलने, सत्य आचरण के करने से 'मन' की शुद्धि होती है। तप अर्थात् अत्यन्त पुरुषार्थ, स्वाध्याय और लगन से 'विद्या' की शुद्धि होती है, तपोमय शुद्ध विद्या से आत्मा की शुद्धि होती है। इस प्रकार जब पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है विवेक जागृत हो जाता है, आचार और व्यवहार सत्य बुद्धि के अनुसार शुद्ध हो जाता है तो 'बुद्धि' की शुद्धि हो जाती है।

क्या विज्ञान इस प्रकार का कोई सूत्र दे सकता है? ••

१ २ ३

तत्व पाँच हैं। हर तत्व के साथ अन्य चारों तत्व भी विद्यमान रहते हैं।

१– पृथ्वी तत्व, २– आधा भाग मूल पृथ्वी तत्व का, शेष आधे में चारों तत्व रहते हैं। ३– मूल तत्व का आधा भाग परम तत्व से आच्छादित होता है, अर्थात् मूल तत्व के प्रत्येक कण–कण में परम तत्व व्याप्त होता है।

परम तत्व एक द्रव्य है, पदार्थ है। वह परम तत्व सबमें समाया हुआ है, अर्थात् परम तत्व प्रत्येक कण–कण में व्याप्त है। इसी कारण वह परम तत्व अपनी स्व–सामर्थ्य से प्रत्येक कण–कण को गति देता है, प्रेरित करता है और सारा रचनाकार्य, क्रमानुसार होने लगता है। इस परम तत्व द्रव्य का कोई शरीर नहीं, कोई आकार नहीं, कोई रूप नहीं। वह तो सर्वत्र व्यापक है, सब में रमा हुआ है, आकार रहित है, अर्थात् निराकार है, चेतन है, अखण्डित है, सर्वान्तर्यामी है, सर्वेश्वर है, सर्व व्यापक है और सर्वशक्तिमान भी है। इसके इस स्वरूप को ऋग्वेद ने ''त्वम् हिना पिता वसो त्वम माता शतक्रतो।'' दोनों संज्ञाओं से सम्बोधित किया है।

स्त्री लिंग – पुल्लिंग का भेद शरीर में होता है, आत्मा और परम तत्व में नहीं, इस परमतत्व की ध्वनि, गूँज, नाद ओमकार के रूप में गुंजारित होती है। संसार के किसी भी क्षेत्र का वासी हो, जब उसे

डकार आती है तो उसके मुख से ओम की ही ध्वनि निकलती है। इसी परम तत्व को परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर आदि नामों से जाना जाता है।

दर्शन ने इस परम तत्व को 'पुरुष विशेष' की संज्ञा दी है। अज्ञानी पुरुषों ने पुरुष विशेष से पुरुष शरीर की कल्पना कर ली है, यह उचित नहीं। वास्तव में पुरुष विशेष का अर्थ है, अत्यन्त पुरुषार्थी, जिसके पुरुषार्थ की कोई सीमा न हो और उसके पुरुषार्थ की किसी से तुलना न की जा सके। जिसने अपने पुरुषार्थ से समस्त संसार की रचना की, समस्त पदार्थ उत्पन्न किये, समस्त प्राणियों के सुख हेतु उनके उपयोगानुसार समस्त उपयोगी ज्ञान और वस्तुओं को प्रदान किया। इसी पुरुषार्थ को ही दर्शन ने "पुरुष विशेष" कहा हैं।

पृथ्वी तत्व – पृथ्वी में आकाश होने से ही भूमि के अन्दर सभी पदार्थ लोहा, चांदी, सोना, ताँबा, कोयला, तेल आदि और अत्यन्त प्रज्वलनशील शक्ति सम्पन्न तत्व आदि विद्यमान पदार्थों का नित्य विकास और वृद्धि होती है। इन तथ्यों से भूमि के अन्दर आकाश तत्व का होना सिद्ध होता हैं।

भूमि के अन्दर से अनेक प्रकार की गैसों का निकलना सिद्ध करता है कि भूमि में वायु तत्व विद्यमान हैं।

ज्वाला मुखी पर्वत सिद्ध करते है कि भूमि में अग्नि तत्व का भण्डार है।

नल, कूप और झरने आदि सिद्ध करते हैं कि भूमि के अन्दर जल तत्व विद्यमान है।

जल तत्व – जल में आकाश होने के कारण से ही जल सागर में जल पोत चलते हैं और अनेक प्रकार के जल जन्तु जल में ही निवास करते हैं। अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं। इस प्रकार जल में आकाश तत्व की विद्यमानता सिद्ध होती है।

जल में वायु समाया रहता है, मछली अपने गलफड़े से जल लेकर उसमें समाया हुआ वायु श्वास के लिये प्राप्त कर शेष जल को बाहर निकाल देती है, जल में जो गति है वह सब वायु की ही है। इस प्रकार जल में वायु तत्व भी समाहित है।

सागर में जो ज्वार भाटे आते हैं वे सब अग्नि तत्व के कारण से ही आते हैं और जल में प्रचण्ड अग्नि लग जाती है उसे 'बड़वानल' कहते हैं। जल दो गैसों हाइड्रोजन और आक्सीजन का मिश्रण है। हाइड्रोजन अत्यन्त ज्वलन्तशील गैस है। जल को फाड़ कर अग्नि प्रज्वलित की जाती है। इस प्रकार जल में अग्नि तत्व पाया जाता है।

जल में पृथ्वी कण पाये जाते हैं। जब वर्षा होती है तो उसके साथ आकाश से पृथ्वी कण साथ आते हैं, वह भूमि पर रह जाते हैं और जल भाप बनकर उड़ जाता है। इस प्रकार जल में पृथ्वी तत्व उपस्थित है।

अग्नि तत्व — प्रज्वलित अग्नि में जब हम कोई भी वस्तु डालते हैं तो वह उसमें प्रवेश कर जाती है, उसका प्रवेश करने से ही अग्नि में आकाश तत्व की विद्यमानता सिद्ध होती है।

अग्नि में वायु समाया रहता है, बिना वायु के अग्नि प्रज्वलित नहीं रह सकती। जलते हुए लैम्प की चिमनी पर यदि हम कुछ रख दें, जिससे लैम्प की अग्नि को वायु प्राप्त न हो सके तो वह अग्नि बुझ जायगी, शान्त हो जायगी। इस प्रकार सिद्ध है कि अग्नि में वायु तत्व समाया ही रहता है।

अग्नि और जल का संवाय सम्बन्ध है, जहाँ अग्नि है वहाँ जल अवश्य है। वेद मन्त्र में आता है "समुद्रादर्णवादधि" 'समुद्र' जल सागर को कहते हैं और 'अर्णव' भी जल सागर को कहते हैं। यह दोनों शब्द एक साथ आये हैं। अर्थ दोनों का अलग--अलग है, 'समुद्र' भूमि के सागर को कहते हैं और सूर्य के चारो ओर जो जल का

सागर है उसे 'अर्णव' कहते हैं। अग्नि और जल का संवाय सम्बन्ध् ा होने से अग्नि में जल तत्व की उपस्थिति सिद्ध होती है।

सूर्य, अत्यन्त प्रज्वलन शील पदार्थों का विशाल भण्डार है। प्रत्येक प्रज्वलन शील पदार्थ ठोस पदार्थ है, पृथ्वी तत्व की प्रधानता लिये है भूमि का अंग है, इस प्रकार अग्नि में भूमि तत्व का समावेश सिद्ध होता है।

वायु तत्व — वायु में पक्षी, मच्छर आदि और वायुयान आदि जो भ्रमण करते हैं, वह वायु में आकाश तत्व की विद्यमानता का ही कारण है।

वायु के घर्षण से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, जो 'दावानल' अग्नि का रूप धारण कर बड़े—बड़े जंगलों को जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार वायु में अग्नि तत्व उपस्थित है।

आकाश में घनघोर घटायें सिद्ध करती हैं कि वायु में जल तत्व समाया हुआ है।

जल के साथ पृथ्वी कण आते ही रहते हैं, इस प्रकार जल में पृथ्वी तत्व विद्यमान है।

आकाश तत्व — आकाश में सभी तत्वों का वास रहता है, सबका गमनागमन आकाश के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार आकाश तत्व में भी शेष चारों तत्व विद्यमान रहते हैं।

मेरा सार भूत मन्तव्य है कि प्रत्येक कण—कण में चेतन परमतत्व के साथ — साथ अन्य पाँचों अचेतन अर्थात् जड़ तत्व भी विद्यमान रहते हैं।

नाल्प इति ब्रुयान्नानसेचन इति। ने दं च किं चेति।।

अथर्ववेद ११/३/२४

वह परमेश्वर थोड़ा नहीं है, बड़ा है, वह उपसेचन रहित नहीं है, सेचन वा वृद्धि करने वाला है और न वह कुछ वस्तु है। अर्थात् ब्रह्म में अंगुली आदि का निर्देश नहीं हो सकता। ●●

स्वर्ग और मोक्ष का अन्तर

स्वर्ग और मोक्ष यह दोनों अलग–अलग हैं। सुख विशेष को स्वर्ग और दुःख विशेष को नरक कहते हैं। जन्म मरण अर्थात् आवागमन से रहित होना मोक्ष कहलाता है। सुख और दुःख अर्थात् स्वर्ग और नरक शरीर में जीवात्मा के रहते हुए प्राप्त होते हैं। स्वर्ग अथवा नरक का आकाश आदि में अन्यत्र कहीं कोई भी स्थान नहीं। स्वर्ग और नरक भूमि पर ही होता है। जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति अर्थात् मोक्ष शरीर से जीवात्मा का सम्बन्ध समाप्त होने पर ही मिलती है। जीवात्मा शरीर द्वारा स्वर्ग अर्थात् सुख विशेष, नरक अर्थात् दुःख विशेष को प्राप्त करते हुए भी जो भी शुभ–अशुभ कर्म करता है उसी से आगामी जीवन के लिए कर्म बन्धन बनता है और उसी के अनुसार अगला जन्म होता है। स्वर्ग सुख विशेष को भोगते हुए भी अनेक अशुभ कार्य संचित हो जाते हैं। इसी प्रकार नरक दुःख विशेष को भोगते हुए भी अनेक नहीं तो कुछ शुभ कर्म भी संचित हो सकते हैं। अशुभ कर्मों के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता वह स्वतः ही होने लगते हैं, परन्तु शुभ कर्मों को करने के लिये कठोर प्रयत्न करना ही पड़ता है। मोक्ष में शरीर नहीं होता। इस कारण से जीवत्मा मोक्ष में रहते हुए भी कुछ कर्म नहीं कर सकता, कर्म तो जीवत्मा और शरीर के मिलन पर ही होता है। ●●

मोक्ष प्राप्ति में कोई प्रतीक्षा नहीं

यह प्रश्न स्वभाविक है यदा कदा सामने आते ही रहते हैं। "क्या मुक्ति सृष्टि के आदि में ही सम्भव है? क्या मुक्ति केवल चार को ही मिलती है? क्या पाँचवा व्यक्ति मुक्ति का अधिकारी नहीं होता? क्या पाँचवे व्यक्ति की मुक्ति अगली सृष्टि के आदि तक रुकी रहती है।"

व्यवहार में देखा गया है कि प्रारम्भिक कक्षा में बच्चों की अधिक भीड़ होती है। वह जैसे जैसे आगे बढ़ते चले जाते हैं। वैसे वैसे भीड़ कम होती चली जाती है। शिक्षा के अन्तिम छोर तक पहुँचते पहुँचते दो चार ही छात्र शेष रह जाते हैं। इसी प्रकार मोक्ष मार्ग के पथिक भी केवल चार ही रह जाते हैं।

यह सत्य है कि मुक्ति सृष्टि के आदि में ही प्राप्त होती है। इन चारो प्रश्नों के पीछे एक मुख्य शंका यह बनी हुई है कि इतने लम्बे अन्तराल के पश्चात् ही केवल चार को ही मुक्ति मिलेगी। वास्तव में इस योग्यता तक पहुँचते पहुँचते केवल चार ही पथिक शेष रह जाते हैं।

यह जो आकाश में हमें चन्द्रमा दिखता है वह चन्द्रमा केवल हमारे भूमण्डल को ही प्रकाश देता हो, ऐसा नहीं है वह २७ और भूमण्डलों को अर्थात् हमारे भूमण्डल सहित २८ भूमण्डलों को प्रकाश देता है। इसे एक चन्द्र परिवार कहते हैं। इसी प्रकार यह सूर्य भी ऐसे–ऐसे सहस्त्रों चन्द्र परिवारों को प्रकाश देता है। इसे एक सूर्य परिवार कहते हैं।

आकाश में आकाश गंगा है, इसे सूर्य रेखा कहा जाता है, इसमें करोड़ो सूर्य परिवार हैं। क्या वह निरर्थक ही पड़े हैं? नहीं,

ऐसा नहीं है। परमात्मा की इस सृष्टि में कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं होती। वैज्ञानिकों का कहना है कि आकाश में इस प्रकार की सहस्त्रों आकाश गंगा है। यह तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है, कि संसार में कितने भूमण्डल हो सकते हैं, कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मेरे अपने स्वयं के विचार से कम से कम अनुमानता ६२ नील २० खरब ८० अरब के आसपास भूमण्डल होने चाहिये। इस प्रकार नित्य ही एक अथवा दो नई सृष्टि का निर्माण होता ही होगा और इसी प्रकार नित्य ही एक अथवा दो सृष्टि की प्रलय भी होती ही होगी। इस प्रकार मोक्षगामी पथिक को कोई प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। जब उसका ज्ञान पूर्ण हो जाता है तो उसे नई सृष्टि की रचना में परीक्षा हेतु भेज दिया जाता है।

इस प्रकार यदि नित्य दो नई सृष्टियों का निर्माण होता होगा तो लगभग प्रति वर्ष २९२० महापुरुषार्थी दिव्य विभूतियों को मोक्ष की प्राप्ति का अनुमान लग रहा है।

इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि मोक्ष प्राप्ति में कोई प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। समय आने पर मोक्ष प्राप्त हो ही जाती है। अन्य भूमण्डलीय ग्रहों में भी मानव उपस्थित हैं। ●●

रचना से पूर्व

इस जगत के उत्पन्न होने से पूर्व, जब सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब तक सर्वशक्तिमान परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत बनाने की सामग्री विराजमान थी। सृष्टि का उपादान कारणअव्यक्त रूप में था तो उसे 'सत्' नहीं कहा जा सकता था क्योंकि वह नेत्रों से नहीं दीख रहा था, (अलक्ष्मम् प्रमेयम्) था। 'असत्' इसलिये नहीं कहा जा सकता कि अभाव से भाव नहीं होता और कारण रूप में विद्यमान था। आकाश वह है जिसमें

गमनागमन हो, जब गति का व्यवहार ही नहीं था तो क्या कुछ था? क्या वह आच्छादित था तो उसका आच्छादन क्या था? यह कौन था? क्या कुछ गहन गम्भीर रूप में था? अर्थात् कुछ था अवश्य पर हमारे लिये वह अज्ञेय है अवर्णनीय है।

उस समय मृत्यु न थी, और उस समय न अमृतत्व था। अर्थात् जीवन की सत्ता, जीवन का लोम दोनों नहीं थे। न रात्रि का ज्ञान था और न दिन का ज्ञान था। उस तत्व का स्वरूप प्राण शक्ति रूप था, परन्तु स्थूल वायु न थी। वह एक अपने ही बल से समस्त जगत् को धारण करने वाला अपनी शक्ति से युक्त था, उससे दूसरा पदार्थ कुछ भी उससे अधिक सूक्ष्म न था।

सृष्टि से पूर्व 'तमस्' था। यह सब तमस् से व्याप्त था। वह कुछ भी विशेष ज्ञान योग्य न था। वह एक व्यापक सलिलावस्था गतिशील पदार्थ जल की जैसी स्थिति में गतिमत् तत्व था, जो इस समस्त को व्यापे हुए था। उस समय जो था भी वह सूक्ष्म रूप से चारो ओर से ढका हुआ था वह तमस् के महान् सामर्थ्य से एक प्रकट हुआ।

सृष्टि से पूर्व वह मन मे उत्पन्न होने वाली इच्छा के समान एक कामना ही सर्वत्र विद्यमान थी जो सबसे प्रथम उस जगत् का प्रारम्भिक बीजवत् थी। क्रान्तदर्शी पुरुष हृदय में पुनः पुनः विचार कर अप्रकट तत्व में ही 'सत्' रूप प्रकट तत्व को बाँधने वाला बल प्राप्त करते हैं।

इन पूर्वोक्त तत्वों की रश्मि सूर्य रश्मि के समान बहुत दूर–दूर तक व्याप्त हुई, नीचे भी और ऊपर भी 'रतस' को धारण करने वाले तत्व भी थे। वे महान सामर्थ्य वाले थे। 'स्वधा' अर्थात् प्रकृति नीची बनाई गई है और उससे ऊँची शक्ति प्रयत्न वाला आत्मा है।

ठीक–ठीक जान सकता है? इस विषय में कौन उत्तम रीति से प्रवचन या उपदेश कर सकता है? कि यह सृष्टि कहाँ से प्रकट

हुई? यह विविध प्रकार का सर्ग किस मूल कारण से और क्या हुआ? विद्वान् लोग भी इस जगत् की विविध प्रकार से रचने वाला मूल कारण के पश्चात् ही हुए हैं। तो फिर कौन इसको जानता है, जिससे यह चारो ओर प्रकट हुआ।

यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस मूल तत्व से प्रकट हुई है, जो इस जगत को धारण कर रहा है या यदि कोई इसे नहीं भी धारण कर रहा। जो इसका अध्यक्ष परमपद में विद्यमान है। हे विद्वान्! वह सब 'परमतत्व' जानता है। चाहे और कोई भले ही न जाने।

हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पहले वर्तमान था। जो इस सब जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से ले के सूर्य पर्यन्त सब जगत् को रच के धारण कर रहा है। वह सुखस्वरूप परमदेव परमेश्वर ही है।

पुरुष उसको कहते हैं कि जो इस सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, अर्थात् जिसने अपनी व्यापकता से इस जगत् को पूर्ण कर रक्खा है। पुर कहते हैं ब्रह्मांण्ड और शरीर को। उससे पूर्व जो जगत् था और जो आगे को होगा तथा जो इस समय में है, इन तीनों प्रकार के जगत् को वही परमेश्वर रचता है। इससे भिन्न दूसरा कोई जगत् का रचनाकार नहीं है। वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर वही मोक्ष को देने वाला है दूसरा कोई नहीं। वह पृथिव्यादि जगत् के साथ व्यापक होके स्थित है और इससे अलग भी। क्योंकि उसमें जन्म लेना आदि व्यवहार नहीं है और अपनी सामर्थ से सब जगत् को उत्पन्न भी करता है और आप कभी जन्म नहीं लेता। यह जो सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है सो वह ब्रह्म के एक देश में बसता है। और जो प्रकाश गुण वाला जगत् है सो वह उससे तिगुना है। मोक्ष सुख भी उसी ज्ञान स्वरूप प्रकाश में है और वह पुरुष सब प्रकाशकों का भी प्रकाशक है।

जगत् उत्पत्ति के तीन कारण होते हैं। एक निमित्त कारण दूसरा उपादान कारण, तीसरा साधारण कारण। निमित्त कारण उसे

कहते हैं जिसके बनाने से कुछ बने और न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं और दूसरे को प्रकारान्तर से बना देवे। उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी। साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं। एक सब सृष्टि को कारण से बनाने, धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखने वाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा। दूसरा परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विधं कार्यान्तर बनाने वाला साधारण निमित्त कारण जीव है। उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। जड़ होने से आपसे आप न बने और न बिगड़ सकती है। किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं—कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी में गिरने और जल पान से वृक्षाकार हो जाते हैं, और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं, परन्तु इनका नियम पूर्वक बनना बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है। इन तीन कारणें के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनाये। उसका अनन्त सामर्थ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने से ही सफल है। परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है। यदा कदा यह प्रश्न उठता है कि बीज पहले है या वृक्ष। वास्तव में बीज ही पहले है क्योंकि बीज हेतु, निदान, निमित्त और कारण यह सब एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही बीज होता है। आँधी, अन्धड़, बवन्डर और वयार के प्रवाह में बीज और अंकुर

उड़कर दूर से दूर देश देशान्तरों में भी जा कर गिर जाते हैं। यहाँ तक ही नहीं यह बीज और अंकुर एक भूमण्डल से दूसरे भूमण्डल तक पहुँचते ही रहते हैं।

ईश! त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है और सर्वगत होने से सबका धारण और प्रलय भी कर सकता है।

सृष्टि की रचना में परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प अर्थात् इससे पूर्व सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथ्वी, अन्तरिक्ष आदि बनाता था, वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी वैसे भी बनावेगा। परमेश्वर के काम बिना भूल चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं।

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश, अवकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें? आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादिक्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्नादि का होता है तो अग्नादि क्रम से और जब विद्युत अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ-वहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ••

रचना काल

सृष्टि, उत्पत्ति को ब्रह्म दिन कहते हैं, और प्रलय को ब्रह्म रात्रि कहते हैं। ''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' जैसा पिण्ड में है वैसा

ही ब्रह्माण्ड में है या जैसा ब्रह्माण्ड में है वैसा ही पिण्ड में है। जिस प्रकार पिण्ड अर्थात् मानव शरीर में केवल इच्छा मात्र से ही शरीर में सारी क्रियाऐं होने लगती हैं अर्थात् कामना के उत्पन्न होते ही शरीर क्रियाशील हो जाता है। जीवात्मा द्वारा बुद्धि के इस सूक्ष्म आदेश को कोई नहीं समझ पाता, उसे तो केवल मन ही ग्रहण कर उसे आगे प्रसारित करता है। क्या जीवात्मा का बुद्धि द्वारा दिया गया यह अति सूक्ष्म आदेश किसी की समझ में आ सकता है? नहीं; कभी नहीं! बुद्धि का यह सूक्ष्म आदेश तभी समझ में आता है, जब उस आदेश के अनुसार इन्द्रियाँ कार्य करने लगती हैं।

'ईक्षण' का अर्थ कामना अथवा इच्छा नहीं। कामना और इच्छा भी एक अर्थवाची होते हुए भी अलग—अलग भाव को लिए होता हैं। इसी प्रकार ईक्षण शब्द भी अपने में अपने भावों को स्वमेव समाहित किए हुए है। ईक्षण का अर्थ ईश की सृष्टि रचना के भावों को स्पष्ट दर्शाता है कि परमेश्वर ने सृष्टि की रचना क्यों की उस सर्वशक्तिमान परमात्मा ने संसार में जो कुछ भी कन्द, मूल, फल, अन्न, दुग्ध, वनस्पति और समस्त रत्न भण्डार 'रत्नधातमम्' आदि समस्त जीवों को उपभोग करने के लिए दिए हैं और इन्हीं का सदुपयोग करने के लिए सृष्टि की रचना की है। ईक्षण शब्द का यही अर्थ बनता है। जिस प्रकार शरीर में कामना के आते ही समस्त क्रियायें संचालित हो जाती हैं, उसी प्रकार परमतत्व ईश में भी ईक्षण के आते ही सृष्टि रचना की समस्त प्रक्रियायें संचालित हो जाती हैं। यह समस्त क्रियायें एक दूसरे की पूरक होने के कारण एक साथ क्रियावान हो जाती हैं, कोई आगे पीछे नहीं।

प्रथम चतुर्युगी अर्थात् प्रथम चरण में सर्वप्रथम 'आकाश' में विद्युतीय गति उत्पन्न हुई, जिससे 'वायु' उत्पन्न होकर चक्राकार भँवर खाने लगी। वायु के अति वेग पूर्ण घर्षण से हाइड्रोजन तरंगें जागृत होने से उसमें अत्यन्त ज्वलन्त शील शक्ति से युक्त

हीलियम उप तत्व से ऍटोमिक शक्ति उत्पन्न हुई और वह संचित शक्ति चक्राकार गति से युक्त प्रज्वलित होकर अपार प्रकाश देने लगी अर्थात् 'अग्नि' तत्व का प्रतीक सूर्य का निर्माण हुआ। इसी को 'सूर्य' मण्डल भी कहते हैं। दूसरी ओर सुदूर वायु के शीतल कण चक्राकार के भँवर में आकर रेडियम कणों को संचित कर 'ऑक्सीजन' शीतल धारा को जन्म देने वाले 'चन्द्र' मण्डल का निर्माण होने लगा। यह चन्द्र मण्डल सूर्य की किरणों से प्रकाशित हो रात्रि में चमकने लगा।

'जल' भी एक तत्व है,वह दो धाराओं के मिलन से सक्रिय होता है। हाइड्रोजन दो भाग और ऑक्सीजन एक भाग के संयोग से जल रूप बनकर नीचे गिरने लगता है। आकाश में एक बहुत विशाल धूलिकण रेखा है। यह सूर्य—चन्द्र के निचले भाग में स्थ्ति है। जब आकाश से जल की धारायें नीचे को आती हैं तो वह इस धूलि कण के विशाल भण्डार में से होती हुई 'पृथ्वी' तत्व के इन कणों को अपने साथ लेकर आती हैं। सुदूर तक आकाश में जहाँ तक सूर्य—चन्द्र के प्रकाश की परिधि है वहाँ तक अनेक चक्राकर भँवर बनने लगे और सूर्य के ताप से जल वाष्प (भाप) बनकर पुनः ऊपर को चला जाता और भूमि कण वहीं पर चक्राकर रूप में संचित होते रहे।

इसके साथ ही नक्षत्र मण्डल के अट्ठाइस नक्षत्रों का भी निर्माण होने लगा। यह चन्द्रमा केवल हमारे भूमण्डल को ही प्रकाश नहीं देता, वह अन्य अट्ठाइस नक्षत्रों को भी प्रकाश देता है। यह एक चन्द्र परिवार कहलाता है। ऐसे—ऐसे सहत्रों चन्द्र परिवारों को यह सूर्य प्रकाश देता है। आकाश गंगा में इस प्रकार के करोडों सूर्य मण्डल हैं। सूर्य पृथ्वी से ३२ लाख गुना बड़ा है और चन्द्रमा पृथ्वी से कुछ छोटा है।

यहीं से ही पृथ्वी का रचना काल प्रारम्भ हो जाता है। इसी को पृथ्वी की रचना का प्रथम सर्ग कहते हैं। सहस्त्रों वर्ष तक पाँचों

तत्वों के आपसी सहयोग से सब में परिवक्वता आने लगी। वायु के भँवर सब को गति देते रहे, सब अपने अपने स्थान पर गोलाकार में घूमते रहे। पृथ्वी सूर्य की और चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करते रहे। जैसे जैसे पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती जाती वैसे—वैसे चन्द्रमा के साथ नक्षत्र मण्डल भी पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ पृथ्वी के साथ साथ सूर्य की भी परिक्रमा करते रहते हैं। घूमने के कारण सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि सभी नक्षत्र गोल होते है।

द्वितीय चतुर्युगी अर्थात् द्वितीय चरण का सम्पूर्ण समय भूण्डल के परिपक्व होने में ही व्यतीत हो गया। इस समय में ऊँचे—ऊँचे पर्वत शिखर तैयार हुए । नीचे की भूमि समतल बनी और उसमें नीचे सागर, पर्वत शिखरों की मिट्टी जम कर पाषाण शिलाओं का रूप धारण करने लगी और उन पर गिरने वाला जल जम कर हिम का रूप लेने लगा। समतल भूमि पर दूब घास जम कर मिट्टी को ठोस और कठोर बनाने लगी। कुछ वृक्ष भी बड़े होने लगे। स्थान—स्थान पर झीलों में जल संचित होने लगा। कुछ नदियाँ पर्वतों से निकल कर मैदानी भागों में होती हुई सागर में जाकर मिलने लगीं।

तृतीय चतुर्युगी अर्थात् तृतीय चरण में सर्वप्रथम जल की शुद्धि हेतु जलचर जीवों की सृष्टि रचना हुई। इन जल जन्तुओं ने जल के समस्त विषाक्त का शोषण कर सारे जल को शुद्ध बनाया। इसके पश्चात् वायु की शुद्धि हेतु नभचर जीवों की सृष्टि रचना हुई। नभचर पक्षियों ने वायु के सारे विष को पानकर वायु को शुद्ध किया। इसके पश्चात् भूमि के विषाक्त को समाप्त करने के लिये विष का भक्षण करने वाले सर्प, बिच्छु, कानखजूरा, डाँस आदि जन्तुओं की सृष्टि रचना हुई।

चकोर पक्षी के सामने भोजन रखने से वह परीक्षा कर बता देता है कि इस भोजन में विष मिला है या नहीं। यदि भोजन के

किसी अंश में किन्चित मात्र भी विष मिला है तो उसे देख कर चकोर पक्षी क्रोधित हो उठता है और उसके नेत्र लाल हो जाते हैं, यदि विष नहीं मिला है तो नेत्र लाल नहीं होते ।

बाज पक्षी —शत्रु के ऊपर मण्डराकर उसके लक्ष्य—भेदन को भ्रमित कर देता है।

तोता—मैना सुनकर शीघ्र नकल कर लेते हैं। और समय आने वैसा ही उच्चारण कर सत्य रहस्य का उद्घाटन कर देते है।

कबूतर—पत्र वाहक का कार्य कर सम्वाद का आदान प्रदान करने के उपयोग में आता है।

गौ के लिये अथर्ववेद १८/४/३३ से ३६ तक —

एतास्ते असौ धेनवः काम दुधा भवन्तु।
एतीः श्येतीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु त्वात्र।।

हे पुरुष! तेरी ये दुधैल गायें कामधेनु, कामना पूरी करने वाली होवें। चितकबरी, धौली, एक से रूप वाली, अलग—अलग रूप वाली बड़े—बड़े बछड़ों वाली गायें, यहाँ तेरी सेवा करें।

पुष्टि कारक सुसंस्कृत अन्नों को और बलदायक रस, दूध घी आदि को तेरे लिये सब दिनों देती हुई होवें। सैंकड़ों दूध की धाराओं वाले स्त्रोतों को मैं देता हूँ। यह गौ रूप पदार्थ पिता आदि बड़ों को दादे आदि मान्य जनों को पुष्ट करता है।

हाथी और घोड़ा — यात्रा कराता है।
गधा — भारवाही हैं
कुत्ता — चौकीदार रखवाला है।

इस प्रकार जल, वायु और भूमि के सारे विषाक्त की समाप्ति हो जाने के उपरान्त समस्त वनस्पति कन्दमूल अन्न आदि के पश्चात् मानव उपयोगी पशुओं की सृष्टि रचना की गई। सबसे अन्त में मानव सृष्टि की रचना हुई।

शं त आपो है मवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते संनिष्पदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।।

अथर्ववेद १९/२/१

हे मनुष्य! तेरे लिए हिम वाले पहाड़ों से उत्पन्न जल शन्तिदायक, और तेरे लिए कूपों से निकले हुये जल शान्तिदायक होवें। तेरे लिए शीघ्र बहने वाले जल और वर्षा से उत्पन्न जल शान्तिदायक हों।

सृष्टि रचना के इस तीसरे चरण की समाप्ति पर 'तृविष्टप' अर्थात् संसार के सब से ऊँचे भू–भाग के मैदानी क्षेत्र में जिसे आज तिब्बत कहते हैं। वहाँ पर माता भूमि के गर्भ में सहस्त्रों नर–नारी पल्लवित हो रहे थे। ऋषि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखते हैं–''क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरी सृष्टि में उत्पन्न होने के साथ, उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता है। क्योंकि –'मनुष्या ऋषयश्य ये'' 'ततो मनुष्या अजायन्त' यह यजुर्वेद में लिखा है। इस प्रकार से यह निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्त्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माँ–बाप के सन्तान हैं। जिस समय यह सब पूर्ण युवावस्था को प्राप्त कर चुके थे और गर्भ रूपी भूमि ऊपर को उठती जा रही थी। परमात्म व्यवस्था के अनुसार पूर्ण परिपक्व अवस्था में आने पर भूमि के ऊपर उठी हुई झिल्ली फटी और समस्त नर नारी उठकर नग्नावस्था में बाहर निकले और सबने एक दूसरे को हाथ जोड़कर नमस्ते की यहीं से ''माता भूमि पुत्रोऽहम्'' का नाद गूँज उठा।

वर्षा ऋतु चल रही थी। रसोई घर की एक दीवार पर सैंकड़ों छाले से दीखने लगे। कुछ समय में नहीं आया कि यह कैसे छाले हैं। अगले दिन भी वैसे ही रहा, मैंने पानी में थोड़ा सा फिनायल डाल कर, उन छालों पर कपड़े से पानी का छपका मारा। घन्टा दो घन्टे के पश्चात् देखा तो सब छाले समाप्त हो गये। मैंने देखा दीवार पर दो सूत लम्बे बारीक–बारीक जन्तु मरे हुए चिपके पड़े थे। झाड़ू से उन को साफ कर दिया। दीवार बिल्कुल साफ थी। यह दृष्य देखकर सृष्टि रचना काल के समय जो भूमि ऊपर को

उठी हुई थी, उसका ध्यान आ गया। सहसा मन में यह विचार आया कि प्रभु जी ने मुझे सृष्टि रचनाकाल के दृष्य को प्रत्यक्ष रूप से दिखाने कें लिये ही यह सरूप उपस्थित किया। इस प्रकार मानव की अमैथुनी सृष्टि का उदय हुआ। यही दिन मानव सृष्टि का पहला दिन था। वसन्त ऋतु में सारी प्रकृति प्रफुल्लित होती है। चारो ओर आनन्द की वर्षा हो रही हैं। मानव उपयोगी समस्त खाद्य पदार्थ और दूध उपलब्ध है। यहीं से ही वर्ष का प्रारम्भ होता है। इसी दिन को चैत्र शुक्ल प्रतिपदा कहते हैं। यह रचना ब्राह्ममुहूर्त में दिवाकर देव के उदित होते समय हुई। भगवान भास्कर देव के उदित होते समय ही। 'अग्नि ऋषि' के मुख से ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र और वर्ण माला के प्रथम अक्षर (अ) से 'अग्निमीड़े पुरोहितम' का सहज रूप में उच्चारण होने लगा। 'वायु ऋषि' के मुख से यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र और वर्ण माला के द्वितीय अक्षर (इ) से 'इषे त्वोजर्जे' का 'आदित्य ऋषि' के मुख से सामवेद और 'अंगिरा ऋषि' के मुख से अथर्ववेद का सहज रूप से गान होने लगा।

इन्हीं चारो ऋषियों ने इळा, सरस्वती, महि, अर्थात् ज्ञान, विज्ञान और भूगर्भ इन तीनों विद्याओं का सम्पूर्ण ज्ञान एवं सब को भाषा, उच्चारण, लिपि, अक्षर और अंको का भी पूर्ण ज्ञान दिया। चारो ऋषियों से चारो वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले दिव्य पुरुष स्वयाम्भुव मनु को 'ब्रह्मा' की उपाधि से विभूषित किया गया। चारो वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा जी के उपदेश पर शरीर ढकने, भोजनादि, रहन सहन की सारी व्यवस्था सबने की।

यहाँ एक स्वभाविक प्रश्न उठता है कि परमेश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा इन चारो ऋषियों को चारो वेदों के सम्पूर्ण ज्ञान से विभूषित किया और केवल एक व्यक्ति को सुनने मात्र से ही चारो वेदों के कण्ठस्थ करने की विलक्षण बुद्धि प्रदान की, और शेष सहस्त्रों नर नारियों को सामान्य बुद्धि ही प्रदान की। क्या यह परमेश्वर का पक्षपात पूर्ण व्यवहार नहीं?

यह प्रश्न स्वभाविक है, वास्तविक है और व्यवहारिक भी है। हम इसका समाधान करने का प्रयत्न करते हैं।

सांख्य दर्शन में स्पष्ट आया है "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा यह चारो ऋषि मुक्ति मार्ग के पथिक थे और यह चारो, चारो वेदों के पूर्ण ज्ञाता थे। परीक्षाकाल में परमेश्वर का जिस वेद को सुनाने का प्रश्न पत्र के रूप में आदेश हुआ वही—वही उन्होंने क्रम बद्ध स स्वर सुनाया। परमेश्वर सम्पूर्ण ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ही उक्त नामों से चार ऋषियों को भेजता है और वह अपने अपने प्रश्न पत्रों के अनुसार उक्त वेद का सम्पूर्ण अपौरुषेय ज्ञान दिव्य पुरुष को कण्ठस्थ कराकर 'ब्रह्मा' की उपाधि से अलंकृत कर परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मोक्ष के वास्तविक अधिकारी बनकर कुछ काल के पश्चात् मोक्षधाम की ओर चले जाते हैं।

'ब्रह्मा' जी को विलक्षण प्रतिभा प्रदान कर मोक्ष मार्ग का पथिक बनाकर प्रगति के पथ पर चलने के लिये प्रेरित करते हैं।

अन्य व्यक्ति अपनी—अपनी मोक्ष अवधि समाप्त होने पर ज्ञान शून्य अवस्था में अमैथुनी सृष्टि के द्वारा अवतरित होते हैं। ज्ञान की आवृत्ति शरीर से होती है, मोक्ष में शरीर न होने के कारण आवृत्ति नहीं होती। आवृत्ति न होने से आत्मा ज्ञान शून्य होने लगती हं और जब पूर्ण ज्ञान शून्य हो जाती है तो वह व्यवस्था के अनुसार अमैथुनी सृष्टि में अवतरित होकर पुनः कर्मक्षेत्र में पदार्पण करती हैं। तीनों प्रकार की स्थितियों को स्पष्ट काने का प्रयत्न किया है।

एक अन्य प्रश्न— भूमि हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र पुत्रियाँ हैं। इस प्रकार हम सब आपस में भाई—बहिन ही माने गये? क्या प्रारम्भ में भाई—बहिन का ही विवाह सम्पन्न हुआ था?

सृष्टि रचना चार प्रकार की है, श्वेदज, अण्डज, पिण्डज और उद्भिज। अर्थात् 'श्वेदज' पसीने से जूँ खटमल आदि। 'अण्डज' अण्डे से उत्पन्न सभी जन्तु। 'पिण्डज' शरीर मैथुन से

उत्पन्न। 'उद्भिज' आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि। यह विषय ऋग्वेद १०/१०/१ से १४ तथा अथर्ववेद १८/१/१ से १६ यह १६ ऋचाएँ यम—यमी संवाद के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचार्य सायण के कथनानुसार यम—यमी दोनों भाई—बहिन हैं। इन १६ मन्त्रों में विवस्नान के पुत्र—पुत्री यम—यमी दोनों का संभोग के निमित्त संवाद वर्णित कहा जाता है। यह चर्चा इतिहास के रूप में कही गई है, जबके वेद में किसी भी इतिहास की चर्चा नहीं, कारण स्पष्ट है कि इतिहास रचना के पश्चात् बना है और चारो वेद सृष्टि के आरम्भ से ही हैं। इस प्रकार वेद में इतिहास जोड़ना अथवा खोजना यह दोनों ही सरासर अन्याय के ही सूचक है। सृष्टि के आरम्भ में समस्त पुरुष वर्ग को यम के नाम से और समस्त स्त्री वर्ग को यमी के नाम से जाना जाता था अर्थात् यम ब्रह्मचारी और यमी ब्रह्मचारिणी ही है। इन मन्त्रों में अमैथुनी सृष्टि के पश्चात् आगे को मैथुनी सृष्टि की रचना के लिये पति—पत्नि सम्बन्ध की चर्चा है। इस प्रारम्भिक ज्ञान चर्चा से सिद्ध है कि अथर्ववेद भी अन्य तीनों वेदों के साथ ही आया है। उद्भिज संज्ञक रचना अर्थात् अमैथुनी सृष्टि में प्रत्येक घटक स्वयंभू घटक है। कोई भी किसी का भाई—बहिन, माता—पिता आदि कुछ नहीं होता। सब एकाकी ही हैं। केवल 'माता भूमि पुत्रोहम' ही है। भाई—बहिन एक माता—पिता की सन्तान को ही कहा जाता है।

इस सूक्त में प्रत्येक स्वयंभू घटक 'यम' अर्थात् ब्रह्मचारी और प्रत्येक स्वयंभू घटक 'यमी' अर्थात् ब्रह्मचारिणी का सन्तान लाभ के लिये ही सम्वाद है। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ में कोई भी घटक भाई—बहिन नहीं और न माता—पिता है, वह तो स्वयंभू घटक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी ही हैं। सृष्टि रचना के पश्चात्, प्रत्येक स्वयंभू घटक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर आगे के लिये मैथुनी सृष्टि को क्रम रूप दिया। ••

मनुष्य की पूर्ण आयु

मनुष्य की आयु के विषय में बहुत सी भ्रान्तियाँ हैं, किसी का मानना है कि सतयुग में हजारों वर्ष की आयु होती थी। कुछ यह भी मानते हैं कि हनुमान जी और अश्वस्थामा अमर हैं। मनुष्य का कोई भी कार्य ऐसा नहीं हैं कि जिसका फल अनन्त हो, जब फल अनन्त नहीं होगा तो अमरता कैसें प्राप्त हो सकेगी? प्रत्येक वस्तु आयु सीमां से बंधी हुई होती है, जब वह सीमा समाप्ति की ओर आती है तो उसके तत्व स्वयं ही शिथिल पड़कर बिखरने लगते हैं। मेरा मानना है कि परमात्मा ने मनुष्य शरीर के अन्दर चार सौ वर्ष का मसाला भरकर भेजा है। परमात्मा यह भी जानता है कि मनुष्य शरीर में जीवात्मा बन्धन मुक्त होने के कारण सभी प्रकारों से वह अपने आप को बन्धन मुक्त समझकर सभी मर्यादाओं का उल्लघँन करने पर उतारू हो जाता है। फलस्वरूप वह अति शीघ्र जरजरित होकर शीघ्र ही काल के गाल में चला जाता है। इस पर भी वह परम दयालु परमात्मा मनुष्य शरीर में स्थित जीवात्मा को योग की दीक्षा देता है, 'जीवेमशरदाशतम्' का उपदेश करता है। हे मानव तू कम से कम सौ वर्ष जीने की तो कामना रख।

प्रश्न उठता है कि मनुष्य की पूरी आयु चार सौ वर्ष कैसे आँकी गई।

प्रश्न उचित है, शंका का समाधान करना ही चाहिए। शंका का सही समाधान होने पर मनुष्य में अमर सिद्धान्तों के प्रति आस्था दृढ़ बन जाती है। परमात्मा की सारी व्यवस्था वेदों में हैं, और वेदाज्ञा में कभी परिवर्तन नहीं होता, वह युग विशेष के लिए नहीं बदलती, वह सर्व कालिक होती है। छान्दोग्य उपनिषद् वेद व्याख्या ही है। महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखते हैं।

तं चेदेतस्मिन्वयासि किञ्चदुपतपेत्स ब्रू यात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसन्तनुतेति माहं प्राणानामादित्यानी मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति।।

छान्दोग्योपनिषाद् ३/१६/६

जो आचार्य और माता पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुण ग्रहण के लिए तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावे, वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते, वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार यह सत्य सिद्ध होता है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन से मनुष्य की पूर्ण आयु चार सौ वर्ष की ही है।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्ता
सामेकामिदभ्यं हूरोगात्।
अयोहं स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ।।

ऋग्वेद १०/५/६

सात मर्यादायें बनायी हैं।

क्रान्तदर्शी शक्तियों वाले परमात्मा ने, उनमें से एक का भी (जो) उल्लंघन करता है, (वह) पाप हो जाता है। मनुष्य मात्र का वह आश्रयदाता, पास ही के घोंसले (हृदय गुफा) में (निवास करता है) मर्यादा–पथों के छोड़ देने पर स्व–पकड़ में रखने की शक्ति से सम्पन्न है।

सात मर्यादाओं का सम्बन्ध पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, कान, त्वचा, रसना, और दो कर्मेन्द्रियाँ वाक् और उपस्थेन्द्रिय से है। जो

इनका संयत और सय्यम रूप से उपयोग करता है वह पाप रहित होकर आवागमन के चक्र से बच जाता है, और जो असयंत रूप से इनका दुरूपयोग करता है तो वह पापी हो जाता है और उसके ऊपर मर्यादा उल्लंघन के अनुसार दण्ड स्वमेव अपने आप ही बिना किसी पुलिस और बिना किसी न्यायालय के स्वभाविक रूप से ही लागू हो जाता है। मन्त्र में भाव स्पष्ट है कि वह परमात्मा पास ही के घोंसले में निवास करता है अर्थात् हृदय गुफा में रहता है। इसका स्पष्ट संकेत ऋग्वेद १/१६४/२० के मन्त्र में मिलता है। "वह परमात्मा प्रकृति के पदार्थों में और स्वयं जीवात्मा ने जो शरीर धारण कर रखा है उसमें भी व्यापक होने के कारण उसके भोगने के प्रकारों को देखता है।" ●●

निरर्थक शंकायें

सृष्टि के आदि में मनुष्यों के शरीर पूर्ण युवा थे परन्तु बुद्धि 'बाल' थी, कुछ का मानना है कि सृष्टि की रचना के ५ वर्ष अथवा ५० वर्ष के पश्चात् मनुष्यों ने बोलना सीखा, यह दोनों हीं प्रश्न निरर्थक हैं। सृष्टि के आदि में मनुष्यों के शरीर पूर्ण युवा हों और बाल बुद्धि हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है। परमात्मा न्यायकारी है,. वह अन्याय कैसे कर सकता है। उसने सृष्टि के प्रारम्भ में शरीरों के साथ बुद्धि भी पूर्ण युवावस्था की ही दी थी। यह सम्भव नहीं हो सकता कि शरीर आगे बढता जाय और बुद्धि बाल बुद्धि से आगे बढे, तो इस प्रकार शरीर के साथ–साथ बुद्धि २५ वर्ष पीछे चलती रहेगी। जबके हम देखते हैं कि बच्चे में बाल बुद्धि होती है और जैसे –जैसे वह बढता चला जाता है तो उसकी बुद्धि भी वैसे

ही वैसे बढ़ती चली जाती है। सृष्टि के आरम्भ में शरीर के साथ–साथ बुद्धि भी पूर्ण युवाओं की ही थी। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को ५ अथवा ५० वर्ष के पश्चात् ही वाणी का बोध होना बिल्कुल ही असंगत है। क्या वह ५ अथवा ५०वर्ष तक ऐसे ही निरर्थक घूमते अथवा रहते रहे? नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता।

मनुष्य श्रुति प्रधान है वह सुनकर ही सब कुछ सीखता है। ५ अथवा ५० वर्ष तक जब उसने कुछ सुना ही नहीं तो ५ अथवा ५० वर्ष के पश्चात् कैसे बोलना सीख सकता है। उसे तो जन्म से ही नेत्र, कान और मुख प्राप्त हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही सारे मनुष्यों को वाणी, बुद्धि, भाषा, लिपी, अंक, ज्ञान आदि सब कुछ ही प्राप्त था। ●●

दिनों के नामांकन

सृष्टि रचना में मानव की उत्पत्ति होते ही, काल गणना का कार्य प्रारम्भ हो गया। सप्ताह में सात दिन होते हैं। जिस दिन सृष्टि की उत्पत्ति हुई, उसी समय ब्राह्ममुहूर्त के प्रथम प्रभात में पूर्व दिशा की ओर से उदित होते हुए प्रकाश के पुञ्ज सूर्यदेव के सबने दर्शन किये। 'सूर्य' को 'रवि' भी कहते हैं, इस निमित्त कारण से इस दिन का सम्बोधक नाम'रविवार' रखा गया। अगले दिन सायंकाल के समंय पश्चिम दिशा में दूज के चन्द्रमा की सुन्दर, शीतल, सौम्य; समीर रेखा को देख कर इस दिन का सम्बोधक नामांकन के रूप में 'चन्द्रवार' रखा गया, चन्द्रमा को सोम भी कहते हैं इसी कारण 'सोमवार' भी कहा जाता है। अगले दिन भूमि पर उपजे नाना प्रकार के सुन्दर और स्वादु पदार्थों को देखकर सब आनन्दित हो उठे, इस

कारण से इस दिन का सम्बोंधक नामोच्चारण 'भोमवार' रखा गया, समस्त पदार्थों को प्रदान करने वाली और मंगलकारी होने से 'मंगलवार' भी कहते हैं। आगामी दिन बुद्धि का विकास हुआ इस कारण से इस दिन का सम्बोधक उच्चारण 'बुद्धवार' रखा गया। अगले दिन अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों के द्वारा वेद ज्ञान सुना और प्रथम मनु 'स्वायम्भुव मनु' जी महाराज ने चारो ऋषियों से सम्पूर्ण ज्ञान देने का आग्रह किया, जिसे स्वीकार कर चारो ऋषियों ने चारो वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान 'स्वायम्भुव मनु' को कण्ठस्थ कराकर 'ब्रह्मा' की उपाधि से विभूषित किया और यहीं से ही गुरु शिष्य की परम्परा का जन्म हुआ, इसी कारण इस दिवस का सम्बोधक उदबोधन 'गुरुवार' रखा गया। अगले दिन शुक्र की जागृति होने लगी स्त्री—पुरुष के सम्पर्क की इच्छा बनने लगी इस लिये इस दिनकर का सांकेतिक नाम 'शुक्रवार' रखा गया। यहीं से ही परिवार बन्धन कर आरम्भ हुआ। अगले दिन स्वार्थवृत्ति की भावना उमड़ा पड़ी, तेरा मेरा होने लगा, बुद्धियों पर तामस पन छाने लगा, तमोगुण की अधिकता के कारण क्रोध भी बढ़ने लगा, इसी कारण इस दिन का सम्बोधक नाम तमोगुण सूचक 'शनिवार' रखा गया। सबके नामांकन के साथ 'वार' शब्द लगा है 'वार' का अर्थ दिवस अथवा दिन होता है। ●●

पूर्ण क्या है?

कहा जाता है कि पूर्ण में से पूर्ण को घटाया जाता है तो उसके पश्चात् पूर्ण ही शेष रहता है। उदाहरण में कहा जाता है, जिस प्रकार शून्य में से शून्य को घटाने पर शून्य ही शेष बचता है। हमारा प्रश्न उठता है कि शून्य में से शून्य को ही क्यों घटाया जाय, क्या एक में से एक को घटाकर एक बचेगा? नहीं। तो क्या

नौ में से नौ को घटाने पर नौ बचेगा? इसका भी उत्तर नहीं में ही मिलेगा। क्यों? उत्तर स्पष्ट है कि एक से लेकर नौ तक की गिनती अपूर्ण है। कारण शून्य से पूर्व एक नहीं था, एक से पूर्व शून्य आवश्य था। एक से नौ तक के अंक अपूर्ण होने से जिस अंक में से उसी अंक को घटाने पर शून्य .ही बचेगा। शून्य व्यापक है पूर्ण भी है।

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूणात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात् परमात्मा परिपूर्ण है। उसमें से यह संसार भी परिपूर्ण उत्पन्न हुआ है, इस परिपूर्ण संसार के उत्पन्न होने के पश्चात् भी वह परमात्मा परिपूर्ण ही शेष है।

जिस प्रकार हम माता—पिता पूर्ण हैं। हमने अपने में से घटाकर सन्तान को जन्म दिया। सन्तान भी पूर्ण होती है और उसके पश्चात् हम भी पूर्ण ही शेष रहते हैं। इसी प्रकार से सारे जीव जन्तु आदि भी अपने में पूर्ण हैं और अपने परिवार को बढ़ाने के लिये पूर्ण सन्तति को जन्म देते हैं और अन्त में अपने आप भी पूर्ण ही शेष रहते हैं।

यही प्रकृति का नियम है और इसे ही पूर्ण की संज्ञा दी गई है। ••

वेद अपौरुषेय क्यों?

पौरुषेय का अर्थ है पुरुष का ज्ञान। अपौरुषेय का अर्थ है परमेश्वर का ज्ञान। पुरुष का ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन भी हो जाता है। ईश्वर का ज्ञान परिपूर्ण होता है, उसमें कभी न्यूनाधिकता नहीं होती। पुरुष का ज्ञान तो पुरुष के द्वारा आता है और परमेश्वर का ज्ञान भी पुरुष के

द्वारा ही आता है। परमेश्वर अजन्मा है, अकाय है अर्थात् वह जन्म नहीं लेता, वह शरीर रहित है। इसीलिये वह अपना सम्पूर्ण ज्ञान आदि सृष्टि में चार ऋषियों के द्वारा भेजता है। इसी कारण उस ज्ञान को पौरुषेय ज्ञान भी कह देते हैं जो वास्तव में सर्वथा गलत है। यह सत्य है कि वह ज्ञान पुरुष के द्वारा आया है परन्तु वह ज्ञान पुरुष का नहीं, वह ज्ञान परमेश्वर का परिपूर्ण ज्ञान है, उसे पुरुष का ज्ञान कहना नितान्त असत्य है। क्यों?

एक विद्यार्थी किसी भी विद्यालय में किसी भी कक्षा अथवा किसी भी विषय को पढ़ रहा है। पाठ्य पुस्तक को पढ़कर अध्यापक पढ़ा रहा है। विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। आप बता सकते हैं कि जिस विषय में वह विद्यार्थी उत्तीर्ण हुआ है क्या वह ज्ञान उसका अपना है? आपको इसका उत्तर देने में संकोच हो सकता है। आप विचारिये क्या वह ज्ञान अध्यापक का है या विद्यार्थी का? वास्तव में वह ज्ञान इन दोनों में से किसी का नहीं। हाँ उस पाठ्य पुस्तक का अवश्य कहा जा सकता है। मेरा आपसे प्रश्न है, पाठ्य पुस्तक का ज्ञान किस का ज्ञान है? आप उत्तर दें या न दें परन्तु उस पाठ्य पुस्तक का ज्ञान, पुस्तक लेखक का ज्ञान है। हम यह जानना चाहेंगे कि क्या वह ज्ञान पुस्तक लेखक का अपना ज्ञान है? आप कहेंगे कि वह ज्ञान उसके स्वयं का अपना नहीं, वह भी अध्यापक अथवा पुस्तक से पढ़कर ही प्राप्त किया हुआ ज्ञान है। आप इसी क्रम से उत्तरोत्तर देखते चले जायें तो अन्त में आप को यह स्पष्ट हो जायगा कि मानव के पास अपना स्वमेव का कोई ज्ञान नहीं।

चौरासी लाख कहे जाने वाले समस्त जीव जन्तुओं के पास उनकी आवश्यकता के अनुसार उनको पूर्ण ज्ञान प्राप्त है, उन्हें किसी के उपदेश की आवश्यकता नहीं। परमात्मा उन सबको आवश्यकता के अनुसार पूर्ण ज्ञान जन्म से ही प्रदान कर देता है। परन्तु मानव को यह गुण प्राप्त नहीं। इस गुण के अभाव के कारण

ही मानव को उपदेशार्थी का गुण प्रदान कर चारो वेदों के द्वारा मानव उपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान किया है।

सिंह का बच्चा भेड़ों के साथ रहकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, परन्तु मानव का बच्चा भेड़ों के साथ रहकर भेड़ों जैसा बन जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानव के पास अपना कोई ज्ञान नहीं और वह न किसी को कोई ज्ञान देने में समर्थ है।

जब आदि सृष्टि में मानव ने किसी से ज्ञान प्राप्त किया ही नहीं तो वह आगे के लिये किसे ज्ञान दे सकता है। स्पष्ट है आदि सृष्टि का ज्ञान पुरुष का नहीं परमेश्वर का है। इसलिये चारों वेदों का ज्ञान अपौरुषेय ही है।

कोई भी वैज्ञानिक, अन्वेषक जब किसी भी प्रकार की कोई खोज करता है तो वह मानव रचित यन्त्रों के द्वारा ही करता है। यन्त्र कितना सही कितना गलत उत्तर दे रहे हैं या देंगे, इसका निर्णय कौन करेगा? इसका कोई समाधान है? नहीं! तो विज्ञान को अन्तिम निर्णायक कैसे मान लिया जाय। जबके वैज्ञानिक स्वयं मानते हैं कि उनके द्वारा निकाला हुआ समय, आयु, दूरी आदि शत–प्रतिशत पूर्ण नहीं हो सकती। उसमें कम से कम एक अंक पर साठ बिन्दु लगाकर जो गणना बनती है, जो नहीं के बराबर ही है उतना अन्तर तो होना वैज्ञानिक स्वयं स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार वर्तमान में आधुनिक एटोमिक घड़ी में भी यह माना जा रहा है कि उसके द्वारा बताया गया समय लगभग १०० वर्ष के पश्चात् कुछ न कुछ अन्तर अवश्य ही देगी।

जबके वेद विज्ञान के द्वारा निर्धारित किया गया समय, आयु, आदि अपने में परिपूर्ण होती है। उसमें उक्त न्यूनता का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार भी वेद अपौरुषेय ही सिद्ध होता है।

हमने अपने उपयोग के लिये 'वाशिंग मशीन' अथवा अन्य कोई मशीन खरीदी। उसके साथ एक पुस्तिका भी मिली, उसमें मशीन के उपयोग करने की सारी विधि लिखी होती है। बिना उस

लिखित आदेश के हम मशीन का सही प्रकार से उपयोग नहीं कर सकते अन्यथा गलत प्रकार से उपयोग करने पर मशीन शीघ्र ही नष्ट हो सकती है। इसी प्रकार अपने उपयोग में आने वाले समस्त यान्त्रिक उपकरणों के उपयोग की सही और पूरी जानकारी के लिये उसके साथ लिखित निर्देश पुस्तिका मिलती है। वास्तव में यह प्रक्रिया सही और सटीक होती है। अब शान्त चित्त होकर विचार कीजिये बिना जानकारी के किसी भी वस्तु को सही प्रकार से उपयोग करना कितना कष्ट साध्य हो जाता है। जब मानव रचित यान्त्रिक उपकरणों की यह स्थिति है तो बिना जानकारी के मानव संसार में कैसे सही रूप से विचरण कर सकेगा। इसीलिये परमेश्वर ने मानव को अवतरित करने के साथ ही निर्देश रूपी पुस्तिका के रूप में चारो वेद का ज्ञान दिया। इस प्रकार आदि सृष्टि में ही अपौरुषेय चारो वेद के ज्ञान का आना सिद्ध होता है।

संसार के किसी भी विद्वान् वैज्ञानिक अन्वेषक आदि ने आज तक यह नहीं कहा कि वेदों में कोई कमी या भूल है। वेदों में दिये गये सभी सिद्धान्तों को संसार के वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है। वेद शुद्ध, पवित्र और पूर्ण ज्ञान के देने वाले हैं, वेदों की किसी ने भी आज तक कोई आलोचना नहीं की। संसार के वैज्ञानिकों ने प्रयोग शालाओं में बैठकर विज्ञान की कसौटी पर वेद के सभी विषयों को कस कर देखा है, किसी को कोई भी खोट नहीं दीखी।

ऐसे शुद्ध ज्ञान को, ऐसे पूर्ण ज्ञान को, ऐसे पवित्र ज्ञान को जिस किसी ने भी दिया है, वास्तव में वह परिपूर्ण ही होगा। अपूर्ण नहीं हो सकता। संसार में यदि कोई परिपूर्ण है तो वह ईश्वर ही है, इस प्रकार चारो वेद ज्ञान विज्ञान में परिपूर्ण हैं। चारो वेद ईश्वर कृत, अपौरुशेय ही सिद्ध होते हैं। ••

वेदों का अवतरण

संसार की रचना के साथ ही उस सर्वज्ञ दयामय परमात्मा ने सर्वज्ञ और परिपूर्णा ज्ञान देने वाली निर्देशिका के रूप में चारो वेदों का ज्ञान हमें दिया। जिसके द्वारा हमने जीवनयापन को भली प्रकार समझा।

"प्रथमो जो हवीमि"

अथर्ववेद १९/४/१

अर्थात् सबसे पहला अर्थात् मुख्य विद्वान् वेदज्ञ को मैं बराबर देता हूँ।

अस्तवि गन्य पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वा ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेघा अमृक्षत।।

अथर्ववेद २०/११९/१

पूर्त का अर्थात् पूर्व कल्प का ज्ञान स्तुति किया गया है, इन्द्र बड़े ऐश्वर्य वाले परमात्मा के पाने के लिये वेदवचन को तुम बोलो। सत्य ज्ञान की पहली बढ़ती हुई वाणियों की ऋषियों ने स्तुति की है और स्तुति करने वाले विद्वान् को धारणावती बुद्धि दी है।

अथर्ववेद २०/१२८/६ से ११ तक के मन्त्रों में "कल्पेषु सांमिता" आया है जिसका अर्थ है "पूर्व कल्प से प्रमाणित है"। अर्थात् वेद का ज्ञान पूर्व कल्प से निरन्तर चलता चला आ रहा है। जिस प्रकार सृष्टि रचना प्रवाह: से अनादि है, उसी प्रकार वेद का ज्ञान भी प्रवाह से अनादि है।

वेद पवित्र ईश्वरीय ज्ञान की अनुपम निधि है। इन चारो वेदों का ज्ञान स्वयंभू परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में मानव को इस संसार सागर के कर्म क्षेत्र में अवतरित करने के साथ ही समस्त विद्याओं, व्यवहारों, कर्त्तव्यों और समस्त निधियों से भरपूर मानव उपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान को दिया। क्योंकि सब मनुष्यों का ज्ञान में

म्वातन्त्रता नहीं है और स्वाभाविक ज्ञान मात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। इसी से परमेश्वर ने सब मनुष्यों के हितार्थ वेदों का प्रादुर्भाव सृष्टि के आदि में किया।

प्रश्न उठता है कि उक्त चारो ऋषियों को अलग—अलग चारो वेदों का ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ।

त्वं ही विश्वतोमुख विश्वत: परिभूरसि।
अप न: शोशुचदघम्।।

ऋग्वेद १/९७/६

हे अग्ने परमात्मन! तू ही सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्व तो मुख हो, हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्य उपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है।

सृष्टि के आदि में इन चारो ऋषियों को चारो वेदों का परमेश्वर की स्वशक्ति से पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ।

किसी ने कभी भी दो का पहाड़ा याद नहीं किया और न सुना, तो उसके सामने दो दुनी तीन कहदें या पाँच कहदें तो उसके लिये कोई अन्तर नहीं लगेगा, वह नहीं जानता दो दुनी चार होते हैं और जिसने दो का पहाड़ा याद किया है या पढ़ा है तो वह दो दुनी तीन या पाँच को मना कर देगा वह कहेगा दो—दुनी चार ही होते हैं। इस उपमा का मन्तव्य यह है कि जिसने कुछ पढ़ा है, याद किया है, आचरण में लाया है, आवृति की है तो उसे सुनकर उसकी स्मृति जाग्रत हो सकती है अन्य की नहीं।

सामान्यता किसी भी कक्षा की परीक्षा में ३३ प्रतिशत अंक प्राप्त कर परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो जाता है, इससे अधिक अंक आने पर अधिक योग्य माना जाता है। परन्तु मोक्षगामी परीक्षार्थी को परिपूर्ण अंक प्राप्त करना अनिवार्य होता है। इसकी पुष्टि करते हुए सांख्य दर्शन ने कहा है—''ऋते ज्ञानान्न मुक्ति'' बिना शाष्वत ज्ञान के मुक्ति नहीं होती। परमात्म व्यवस्था से प्रत्येक नई सृष्टि रचना के काल में

चारो वेदों के पूर्ण ज्ञाता चार ऋषियों को प्रश्न पत्र के रूप में जिस–जिस वेद के ज्ञान को सुनाने के लिये परीक्षा काल में आदेश हुआ वही–वही उन्होंने सबको ज्ञान देकर मोक्ष मार्ग के गामी बनें।

इसी प्रकार प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में चारो वेदों का अवतरण होता है।

एक प्रश्न सामने आया– क्या ईश्वर का सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में ही है? इस से आगे उसके पास कोई और ज्ञान ही शेष नहीं रहा?

उत्तर– जिस प्रकार प्रत्येक जीव–जन्तु, कीट–पतंग आदि सभी को जितने ज्ञान की आवश्यकता है उसे उतना ही ज्ञान, रक्षा, भोजन, वाणी, भाषा, रहनसहन, प्रजनन आदि सब कुछ जन्म से ही दिया गया है। उसी प्रकार मानव को जितने ज्ञान और जिस ज्ञान की आवश्यकता है वह सम्पूर्ण ज्ञान वेदों में विद्यमान है। इसका यह अर्थ नहीं कि ईश के पास और ज्ञान ही नहीं। वेद ने इस प्रश्न का समाधान स्वयं किया है।

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति के तुना।
धियो विश्वा वि राजति।।

ऋग्वेद १/३/१२ यजुर्वेद २०/८६

ज्ञानमयी वेद वाणी अपने ज्ञान से ही बड़े भारी ज्ञान सागर का उत्तम रीति से बोध करती है और समस्त ज्ञानों और कर्मों को विविध प्रकार से प्रकाशित करती है।

जिस प्रकार निरन्तर बहती जलधारा यह सूचना देती है कि उसके निकास में अनन्त जल सागर है, उसी प्रकार वेदवाणी भी परम्परा से निरन्तर अपने निकास में स्थित अनन्त ज्ञान भण्डार में से मानव अपेक्षित ज्ञान और शब्दराशि की धारा को प्रवाहित कर अपने अनन्त ज्ञान भण्डार सागर का बोध कराती रहती है। उसके पास अनन्त ज्ञान भण्डार है। परमात्मा की स्वशक्ति से मोक्ष गामी चार ऋषियों के द्वारा चारो वेदों का अवतरण हुआ है।

वेद में पुनरुक्ति

"वेदेषु पुनरुक्ति दोष ईश्वरोक्तत्वात्

ईश्वरोक्त होने से वेदों में पुनरुक्ति को दोष नहीं माना जा सकता।

वेद को मानवी रचना मानने पर तो उसमें दोषों की सम्भावना हो सकती है, परन्तु उसे सर्वज्ञ परमेश्वर का निःश्वसित ज्ञान मानने पर उसमें दोष दर्शन से अपनी ही अल्पज्ञता प्रमाणित होती है।

न हि प्रयोजनमनभिसन्धाय
प्रेक्षावन्तः प्रवर्त्तन्ते।

कोई भी बुद्धिमान पुरुष प्रयोजन के बिना किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता। फिर, परमेश्वर तो मनीषी है। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा आदि दोषों की उसमें कल्पना नहीं की जा सकती, अतः उसकी कोई भी क्रिया निष्प्रयोजन अथवा स्मृति भ्रंशता या अज्ञानवश नहीं हो सकती।

बुद्धि पूर्ण वाक्यकृतिर्वेदे

वै०द० ६/१/१

परमेश्वर के नैसर्गिक नित्यज्ञान के बोधक वेद में—उसके अमरवाक्य में जो वाक्य रचना है, पद व पदसमूहों की आनुपूर्ती है, वह सब बुद्धि पूर्वक है, अतः जहाँ शब्द अथवा अर्थ की पुनरुक्ति प्रतीत होती हो वहाँ उसके विशेष अभिप्राय को जानने के लिये गम्भीरता पूर्वक यत्न करना चाहिये। यदि किन्हीं व्याख्याकारों ने इस प्रकार के प्रसंगों में विशेषार्थ को प्रकट नहीं किया तो वह व्याख्याकारों का दोष है, न की वेदों का।

(वेद में पुनरुक्ति = वेद मीमांसा, स्वामी विद्यानन्द सरस्वती)

वेद, श्रुति परम्परा से कण्ठस्थ होते चले आ रहे हैं। इनको कब और किसने कलमबद्ध किया इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ७ वें मनवन्तर की २८ वीं चतुर्युगी के द्वापर के अन्त में महाभारत युद्ध के पश्चात भयंकर विनाश होने के कारण सब कुछ समाप्त हो गया था। अनुमान लगता है कि ऐसी विषम परिस्थिति में वेद व्यास जी महाराज ने ही वेदों को कलमबद्ध किया हो। ●●

चन्द्रमा पृथ्वी का खण्ड नहीं

आधुनिक विज्ञान मानता है कि पृथ्वी बनी, उसका एक खण्ड टूट कर दूर जा गिरा और वही चन्द्रमा बन गया। विज्ञान की यह उड़ान सरासर गलत है, यह किसी भी प्रकार सत्य सिद्ध नहीं होती।

सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवी चान्तरिक्षमथो स्वः।।

ऋग्वेद १०/१९०/३

उस विधाता ने सूर्य और चन्द्र को, द्युलोक, पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक अर्थात् अन्य अन्तरिक्ष मण्डल आदि का यथा पूर्व अर्थात् क्रमशः पूर्व सृष्टि में जैसा बनाया था वैसा ही अब बनाया है।

उर्वीरासन परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिंम घ्रंसमू च रोहिताः।।

अथर्ववेद १३/१/४६

संसार में चौड़ी दिशायें परकोटा रूप हुई भूमि वेदी (यज्ञ कुण्ड) रूप बनाई गई। उस में सब के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ने इन दो अग्नियों अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा को ताप और शीत रूप स्थापित किया है।

सोमेनादित्या बलिना सो मेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामे वायुपस्थे सोमआहिता।।

अथर्ववेद १४/१/२

चन्द्रमा के साथ सूर्य की किरणें बलवान होती हैं और चन्द्रमा के प्रकाश के साथ पृथिवी बलवती अर्थात् पुष्ट होती है और इन चलने वाले तारागणों के समीप में चन्द्रमा ठहराया गया है।

अथर्ववेद १९/७ का पूरा सूक्त ५ मन्त्रों का है। इन मन्त्रों में २८ नक्षत्रों के नाम दिये हैं। अथर्ववेद १९/८/२ "अष्टाविंशति" यह अट्ठाइस नक्षत्र कल्याणकारी और सुख दायक हों।

यदस्य दक्षिणमक्ष्य सौ स आदित्यो यदस्य।
सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमा:।।

अथर्ववेद १५/१८/२

जो इस परमात्मा का दाहिना नेत्र है सो वह चमकता हुआ सूर्य है। और जो इसका बायाँ नेत्र है सो वह आनन्द प्रद चन्द्रमा है।

इन सभी प्रमाणों से हमारे कथन की पुष्टी होती है और यह सत्य सिद्ध है कि पृथ्वी के निर्माण से पूर्व ही सूर्य चन्द्रमा दोनों का एक साथ निर्माण हुआ है। ••

निःशुल्क अथवा अल्प मूल्य साहित्य
दानी महानुभावों के सौजन्य से
प्रकाशित होता है।
दान के साहित्य को रद्दी में
बेचना अथवा निरर्थक
नष्ट करना भयंकर पाप है।
ऐसे साहित्य को स्वयं पढ़े,
औरों को पढ़ने के लिये प्रेरित करें।

सृष्टि रचना एवं वेद और मानव उत्पत्ति काल

लोकमान्य तिलक ओरायन अर्थात् 'मृगशीर्ष' नामक ग्रन्थ में वेदों को ६ हजार वर्ष पुराना मानते हैं, और १८९८ ई० में लिखे 'आर्यों का उत्तर ध्रुव निवास' ग्रन्थ के सारांश का एक पत्र मैक्समूलर के पास भेजा। पत्र के उत्तर में मैक्समूलर ने लिखा कि कितने ही वेद वाक्यों का अर्थ जैसा आप लिखते हैं, वैसा हो सकता है। तथापि मुझे शंका है कि आप का सिद्धान्त भूगर्भ शास्त्र के साथ न मिल सकेगा। इसका मतलब यह है कि भूगर्भ शास्त्र के अनुसार हिमप्रपात को हुए बहुत अधिककाल हो चुका है और आप वेदों को ६ हजार वर्ष के ही पुराने मानते हैं। ऐसी दशा में हजारों—लाखों वर्ष पुरानी हिमप्रपात और उत्तरी ध्रुव की बात का वर्णन वेदों में कैसे आ सकता है? मैक्समूलर के ऐसा लिखने का कारण यह था कि उस समय तक भूगर्भ शास्त्र ने हिमप्रपात का समय ८० हजार वर्ष से ऊपर का माना था। तिलक महोदय इस बात से सचेत हुए और अपने ग्रन्थ को पाँच वर्ष तक छपने से रोके रखा। इतने में 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिक' की दसवीं आवृत्ति छप कर बाहर निकाली। उस में कुछ अमेरिकन भूगर्भ शास्त्रियों ने हिमप्रपात का समय आठ दस हजार वर्ष ही पूर्व माना। बस इसको देखते ही तिलक महोदय ने सन १९०३ में अपने ग्रन्थ को छाप कर प्रकाशित कर दिया। तब से ही ६ हजार वर्ष से बढ़कर दस हजार वर्ष का समय मान लिया। तिलक महोदय के मतानुसार जब मनुष्य जाति का प्रदुर्भाव हुआ था तभी वेद का अवतरण हुआ अर्थात् तिलक महोदय के मत से वेदों की उत्पत्ति तो मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही साथ सिद्ध होती है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं, यह बिल्कुल सत्य है।

बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न कहते हैं कि तिलक महोदय का मत संशोधन करने के लिये हम उनके घर गये और उनके साथ

पाँच दिन तक इस विषय में बहस करते रहे। उन्होंने हमसे सरलता पूर्वक कह दिया 'हमने मूल वेद नहीं पढ़े, हमने तो केवल साहब लोगों के अनुवाद पढ़े हैं।'[१] इस एक ही वाक्य में उन्होंने यह कह डाला कि वेदों के द्वारा तिलक महोदय का निकाला हुआ यह सिद्धान्त कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव के निवासी हैं, विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि जो व्यक्ति वेद की पुस्तक को समझ ही नहीं सकता, वह उसके अन्दर की बात कैसे जान सकता है? और कैसे उसके आधार पर अनुसन्धान कर सकता है?

अविनाश बाबू अपने 'ऋग्वेदिक इण्डिया' में लिखते हैं 'वेद' उस समय बने जब सरस्वती नदी हिमालय से बहकर सीधी समुद्र को जाती थी। उस समय राजपूताने का मरुस्थल समुद्र हो रहा था।[२]

वैज्ञानिक लोग भूगर्भ के द्वारा भूमि की आयु निकालने का प्रयास करते हैं, वे कहते हैं भूमि की पर्तों से सही पता चल जाता है कि भूमि की कितनी आयु है परन्तु यह बात मिथ्या है। हमने देखा है एक ही गाँव में एक कुँआ खारी है और उसी गाँव में कुछ ही दूर आकर कुँआ मीठा है एक में तह बालू की है तो दूसरे में उतनी ही गहराई पर लाल मिट्टी की। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि सब स्तर समान लेबिल पर हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि

---

१ अमि गतवत्सरे तिलक महोदये बाटीते आतिथ्य ग्रहण करिया छिलाम। ताँहार सहित ये विषये अमार क्रमागत पाँच दिन बहु संलाप हइया छिलो। तिनि आमाके ताँहार द्वितलग्रेह बसिया सरल हृदये बलिये छेन ये "आमी मूल वेद अध्ययन करि नाई, आमि साहिब दिगरे अनुवाद पाठ करिया छि।" (मानवेर आदि जन्म भूमि पृष्ठ १२४)

[२]A Sea actually covered a very large portion of modern Rajputana. This Rik clearey indicates that at the time of its composition, the river Saraswati used to flow from the Himaliya directly to sea. Regvedic India, Page 7

सब पर्तों की मोटाई समान है और यह भी नहीं कहा जा सकता कि सब में एक ही वस्तु की पर्त विद्यमान हो थोड़े से स्थानों की ज़ाँच से सारी पृथ्वी की आयु का अनुमान करना कितना कठिन है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। पतली तहों का मोटी तहों में लीन हो जाना और हर स्थान की असमानता ये दोनों ऐसे तथ्य हैं जिसके कारण कभी भी भूगर्भ शास्त्र का निकाला हुआ समय सत्य नहीं हो सकता। 'पृथ्वी की आयु' नामक पुस्तक का लेखक भूगर्भ शास्त्र के सिद्धान्तों को मानते हुए भी कहते हैं— कि भूगर्भ शास्त्र की मर्यादा भी निश्चयात्मक नहीं है।[१]

जिस प्रकार बाईबल मनुष्य की उत्पत्ति काल बताने में असमर्थ है, उसी प्रकार वैज्ञानिक भी पृथ्वी की आयु और मनुष्य की उत्पत्ति काल निकालने में हताश हो रहे हैं। मनुष्य उत्पत्ति काल और पृथ्वी की वास्तविक आयु कल्पना के आधार पर नहीं निकाली जा सकती। इसका सत्य स्वरूप आर्यों के सृष्टि सम्वत् से ही ज्ञात हो सकता है परन्तु युगों के द्वारा जो सृष्टि सम्वत् और मनुष्य उत्पत्ति काल निश्चित होता है उसकी ओर तिलक महोदय, श्रीयुत चिन्तामणि विनायक राय वैद्य और श्रीमान् मिश्र बन्धुओं ने कोई दृष्टि भी नहीं की। उन्होंने इस सच्चे सिद्धान्त को छोड़कर विदेशियों की ही कल्पना का सहारा लिया इसलिये उनके सिद्धान्त भ्रम मूलक ही ठहरते हैं।

कोई व्यक्ति किसी की आयु जानना चाहे तो उसे चाहिये कि वह उसके जन्मपंत्र को देखले और उस पर विश्वास करे। उसके लिये यह उचित नहीं है कि वह उसकी आयु जानना चाहता है और उसके जन्म पत्र की ओर ध्यान न करे, किन्तु उसके दाँत, आँख डॉक्टर को दिखलाकर उसकी आयु निश्चित करे। हाँ! यदि कुण्डली न हो तो ऐसा करना अनुचित नहीं। जिन देशों के पास पृथ्वी और मनुष्य

[१] The geological period is difficult to eastablish with certainty.
The Age of the Earth. Page 159

की उत्पत्ति का जन्मपत्र नहीं है, वे भले ही डॉक्टरों से उसकी आयु का अनुमान करावें पर हमारे देश में तो सृष्टि उत्पत्ति पृथ्वी और मनुष्य उत्पत्ति का जन्मपत्र और रोजनामचा बना बनाया रखा है। अत: हमको बिलकुल आवश्यकता नहीं है कि हम उसको हटाकर डॉक्टर की कल्पना पर विश्वास करें।

आर्यों का यह वैदिक सम्वत् पारसियों, स्कन्दनेवियनों और बेबीलोनिया बालों में और हिन्दू आर्य दैनिक संकल्प में नित्य पढ़ा जाता है 'ओ३म् तत्सद् द्वितीयपरार्द्धे वैवस्वत् मनवन्तरे अष्टाविंशति कलौयुगे ५१०० सम्वत्सरे ......मासे.....पक्षे......तिथौ......नक्षत्रे.... वासरे' अर्थात् यह वैवस्वत् मनु का २८ वाँ कलिकाल है जिसके हम ५१०० वें वर्ष सम्वत् २०५६ भाद्रपद मासे शुक्ल पक्षे दौज तिथौ उत्तराषाढ़ नक्षत्रे शनिवासरे वर्ष में चल रहे हैं।

ब्रह्म का एक दिन को कल्प अथवा सृष्टि समय कहते हैं, और प्रलय काल को ब्रह्म रात्रि। यह कल्प अर्थात् सृष्टि काल १४ मनवन्तर १– स्वायम्भुव, २– स्वरोचिष, ३–औत्तमि, ४– तामस, ५– रैवत, ६– चक्षुष, ७– वैवस्वत्, ८– स्वावर्णिक, ९–दक्षसावर्णि, १०– ब्रह्मसावर्णि, ११– धर्मसाविर्ण, १२–सावर्णि, १३– रुचि, १४– भौंम। अथवा एक सहस्त्र चतुर्युगियों का होता है। एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। १४ को ७१ से गुणा करें तो ९९४ चतुर्युगियाँ बनती हैं। शेष ६ चतुर्युगियाँ संधिकाल की होती हैं। इनमें से ३ पूर्व संधिकाल और ३ पश्चात् संधिकाल की होती है। अब तक ६ मनवन्तर व्यतीत हो चुके हैं। ७ वें वैवस्वत मनवन्तर की २७ चतुर्युगियाँ बीत चुकी हैं, २८ वीं चतुर्युगी के कृते (सतयुग) त्रेता, और द्वापर व्यतीत हो चुके हैं। कलियुग के ५०९९ वर्ष व्यतीत होकर अब कलियुग के ५१०० वें वर्ष में चल रहे हैं। सतयुग (कृते) १७ लाख २८ हजार वर्ष का। त्रेता १२ लाख ९६ हजार वर्ष का। द्वापर ८ लाख ६४ हजार वर्ष का। कलियुग ४ लाख ३२ हजार का। सब मिलाकर एक चतुर्युगी ४३ लाख २० हजार वर्ष की कहलाती है। इसे ७१ चतुर्युगीयों से गुणा करने पर ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार वर्ष बने, यह समय एक मनवन्तर

का है। इसे ६ से गुणा करने पर १ अरब ८४ करोड़ ३ लाख २० हजार वर्ष बने। यह समय ६ मनवन्तर के व्यतीत हो जाने का है। इसमें २७ चतुर्युगीयों का समय जो वैवस्वत मनवन्तर की व्यतीत हो चुकी हैं ११ करोड़ ६६ लाख ४० हजार वर्ष, ६ मनवन्तरों के समय में जोड़ दें, इसके पश्चात् सतयुग त्रेता, द्वापर के ३८ लाख ८८ हजार वर्ष और जोड़ दें, वर्तमान कलियुग के ५०९९ वर्ष जो व्यतीत हो चुके हैं जोड़ कर देखें तब १ अरब ९६ करोड़ ८लाख ५३ हजार ९९ वर्ष का समय आता है। यही समय मानव और वेद काल की उत्पत्ति का वास्तविक समय है। इसमें पूर्व संधिकाल के १ करोड़ २९ लाख ६० हजार वर्ष जोड़ने पर सृष्टि रचना का काल १ अरब ९७ करोड़ ३८ लाख १३ हजार ९९ वर्ष का आता है यही सृष्टि, पृथ्वी की वास्तविक आयु है। वर्तमान समय सम्वत् २०५६ तथा सन् १९९९ जो चल रहा है उसमें १ वर्ष जोड़कर वर्तमान पृथ्वी की और मानव की उत्पत्ति की सही आयु निकल आयेगी। आगे को एक–एक वर्ष जोड़ते रहें।

एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सः।

तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/९/२२

अर्थात् जो संवत्सर है वह देवताओं का एक दिन है।

पारसियों के यहाँ भी लिखा है—

तएच अयर महन्यएन्ते यतयारे।

अर्थात् जो देवताओं का एक दिन है वह हमारा एक वर्ष है। इस जन्द भाषा के वाक्य का संस्कृत वाक्य यह बनता है।

ते च अहरं मन्यन्ते यद्धर्षम्।

अतः देवों का एक वर्ष ३६० वर्षों के बराबर है। हमारे देव वर्ष और पारसियों के मतानुसार संसार की स्थिति का समस्त काल १२००० वर्ष है।[१]

[१]The Persian sages led by Zoroaster believed that the total duration of the world's existence was limited to 12,000 years.

The Age of the Earth page3

जिसे ३६० से गुणा करने पर हमारी एक चतुर्युगी अर्थात् महायुग का ४३ लाख २० हजार वर्ष का समय निकल आता है। इस संख्या पर तीन शून्य और लगा देने पर एक सृष्टि काल हो जाता है। इसी प्रकार पारसियों के १२ हजार देव वर्षों को ३६० से गुणा करके उस पर भी तीन शून्य लगाने से सृष्टि का समय निकल आता है।

शाम जी शास्त्री 'सप्ताह की मौलिकता' शीर्षक से एक बहुत ही विचार पूर्ण लेख जुलाई १९२२ में लिखा है। आप लिखते हैं – "हमारे सूर्य सिद्धान्त में जिस प्रकार १० स्वर का एक श्वास, ६ श्वास की १ विनाड़ी, ६० विनाड़ी की एक नाड़ी, और ६० नाड़ी का एक दिन लिखा है, उसी तरह बेबीलोनियन लोगों में भी सास, सर और नेर की गिनती है। यह सास सर और नेर, श्वास स्वर और नाड़ी का ही बिगड़ा हुआ स्वरूप है। रॉबर्ट ब्राउन कहते हैं कि 'बेबिलोनिया' वालों का विश्वास है कि उनके १० राजाओं ने १२० सर राज्य किया। बेरोसस के मतानुसार एक सास ६ वर्ष का, एक नेह ६०० वर्ष की, और एक सर ३६०० वर्ष का होता है। ३६०० को १२० से गुणा करने पर ४ लाख ३२ हजार वर्ष होते हैं। यह कलियुग की वर्ष संख्या है।[1]

बेबिलोनिया वालों के अनुसार और स्कन्दनेविया वालों के यहाँ[2] के अनुसार कलियुग की गिनती का तथा पारसियों के अनुसार चतुर्युगी की गिनती का प्रमाण मिलता है। इसलिये सिद्ध है कि आर्यों की युग गणना और कल्प संख्या ऐतिहासिक है और सत्य सिद्धान्त पर रची गई है।

शतपथ ब्राह्मण अग्निचयन प्रकरण १०/४/२/२२ से २५ वें तक युगों का समय बड़ी विचित्रता से बतलाया गया है। वहाँ लिखा है कि ऋग्वेद के अक्षरों से प्रजापति ने १२ हजार बृहती छन्द बनाये और प्रत्येक छन्द में ३६ अक्षर हैं, अर्थात् ऋग्वेद के कुल अक्षर ४ लाख ३२ हजार हुए। इनके जब ४० अक्षर वाले पंक्ति छन्द बनाते हैं तो १० हजार ८ सौ छन्द होते हैं। एक वर्ष के

३६० दिन और एक दिन के ३० मुहूर्त होने से वर्ष के १० हजार ८ सौ मुहूर्त हुए। यह मुहूर्त से लेकर वर्ष, युग और चतुर्युगी आदि की सभी संख्यायें बतला दी गई हैं। आर्यों में ही नहीं प्रत्युत पारसी स्कन्देनेविया और बेबीलोनिया के लोगों तक में कलियुग की और. चतुर्युगी की संख्या विद्यमान है। तैत्तरीय में एक दिन का एक वर्ष लिखा हुआ है। और शतपथ का वर्णन वेदों के अक्षरों द्वारा मुहूर्त

---

[१]According to the Suryasiddhanta [1-11-12] ten long sylables or Swaras = one respiration or Shwasa, six Shwasas or respirations = one Vinadi, sixty Vinadis = one Nadi, sixty Nadis =one day, that is, the time taken to pronounce 10x6x60x60=2,16,000 syllables is equivalent to a day of 24 hours.

The Babylonion figures like those of the Hindus are 6 and 10 and the multiples of 6 and 10 and their squares, and the terms employed by the Babylonion to name them are Sar [3600] Soss [60], and Ner [600] which seem to be identical with Hindu terms, Swara, Shwasa and Nadi.

Robert Brown says- This stellar and originally Solar Ram stands at the head of the 10 antediluvian Babylonion Kings whose reigns divide the circle of the ecliptic and who are said to have reigned 120 sars (43,2000 years). In Akkad 60 was the unit and according to Berosos, the time periods were a Soss [60- years'] , Ner [60 x 10 = 600], and a Sar [600 x 60 = 3,600] 3,600x120 = 432,000.

[२]According to the Edda, Walhall has 540 gates, if this number be multipied by 800, the number of Einheriers who can march out abreast from each gate, the product will be 4,32,000 which forms the very elementary number for the so frequently named ages of the world or Yugas, adopted both in

से लेकर चतुर्युगी तक गिनती बतला रहा है। ऐसी स्थिति में कैसे कहा जा सकता है कि युगों की लम्बी–लम्बी संख्यायें गपोड़े हैं। स्वयं वेद में लिखा है

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेस्य।
एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता. स्कम्भः प्र विवेश तत्र।।

अथर्ववेद १०/७/९

अर्थात्– भूत भविष्यमय काल रूपी घर, एक सहस्र खम्भों पर खड़ा किया गया है। इन खम्भों के अलंकार से एक कल्प में होने वाली एक सहस्र चतुर्युगियों का वर्णन किया गया है।

शतंते अयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।

अथर्ववेद ८/२/२१.

अर्थात् सौ अयुत वर्षों के आगे दो, तीन और चार की संख्या लिखने से कल्पकाल निकल आयेगा। अयुत दस हजार का होता है। इसलिये सौ अयुत १० लाख हुये। १० लाख के सात शून्य लिखकर उसके पहले अर्थात् शून्य के बराबर से उल्टे २,३,४ लिखने से ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। यह संख्या १ हजार चतुर्युगियों की है। यजुर्वेद में चारो युगों के नाम आते हैं।

कृतायादिनवदर्ष त्रेतायै कल्पिनं।
द्वापराय़ाधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम।।

यजुर्वेद ३०/१८

इस वेद मन्त्र का अर्थ तैत्तिरीय ४/३/१ में इस प्रकार किया गया है।

the doctrine of Brahma and Budha, of which the one now in courre, will extend to 4,32,000 years, the three preceding ones corresponding to the number multiplied by 2,3 and 4.

कृतायसभाविनम् त्रेताया आदिनवदर्शं।
द्वापरा बहिस्सदं कलये सभास्थाणुं।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण ४/३/१

इस वेद मेत्र का अर्थ तैत्तिरीय ४/३/१ में इस प्रकार किया गया हैं।

कृतायसभाविनम् त्रेताया आदिनवदर्शं।
द्वापरा बहिस्सदं कलये सभास्थाणुं।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण ४/३/१

यहाँ तक हमने लिखा है कि चारो युगों और उनके दीर्घ समय का वर्णन वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि प्राचीन आर्य ग्रन्थों में वर्णित है।

उपयामगृहीतो ऽ सि मधवे त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि माधवाय त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि शुक्राय त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि शुचये त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि नभसे त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि नभस्याय त्वो
पयामगृहीतो ऽ सीषे त्वो
पयामगृहीतो ऽ स्यूर्जे त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि सहसे त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि सहस्याय त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि तपसे त्वो
पयामगृहीतो ऽ सि तपस्याय त्वो
पयामगृहीतो ऽ स्यूँ हसस्पतये त्वो।

यजुर्वेद ७/३०

इस वेद मंत्र में १२ मासों के नामों की चर्चा है साथ में मलमास की भी चर्चा है इसे शतपथ ब्राह्मण ने और स्पष्ट किया है।

१— वसन्तिकौ तावृतू। मधुश्च माधवश्च।
२— ग्रैष्मौ तावृतू। शुक्रश्च शुचिश्चा।
३— वार्षिकौ तावृतू। नभश्च नभस्यश्च।
४— शारदौ तावृतू। इषश्च ऊर्जश्च।
५— हेमन्तिकौ तावृतू। सहश्च सहस्यश्च।
६— एतौ एव शैशिरौ। तपश्च तपस्यश्च।

युगों के द्वारा निश्चित किया गया सृष्टि सम्वत् आधुनिक वैज्ञानिकों की खोज—बीन से कहीं अधिक विश्वस्त है और ऐतिहासिक भी है। हम इसमें नित्य एक दिन बढ़ाते जाते हैं, इसलिये यह रोजनामचे की भाँति सत्य और सृष्टि की आयु तथा मनुष्य जन्म की तिथि निश्चित करने का एक मात्र साधन है। इसी साधन से हम कह सकते हैं कि सृष्टि उत्पन्न हुये ६ मनवन्तर २७ चतुर्युगियाँ, तीन युग और कलियुग के ५०९९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं अर्थात् कुछ कम २ अरब वर्ष आज तक व्यतीत हो चुके। यह सारा विवरण गुरुदेव महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में अंकित किया है। हमने कुछ अंश वैदिक सम्पत्ति से भी लिया है।

'वैदिक सम्पत्ति' के प्रणेता श्री पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्य, भूषण अक्षर विज्ञान सम्पादक लिखते हैं — "जिस प्रकार स्वायम्भुव मनु के समय नक्षत्रिक जगत् तैयार हुआ उसी तरह दूसरे स्वारोचिष मनु के समय में पृथ्वी तैयार हुई। तीसरे मनु के समय में पृथ्वी से चन्द्रमा जुदा हुआ। चौथे मनु में समुद्र से भूमि निकली। पाँचवें मनु में वनस्पति हुई। छटवें मनु में पशु हुए और सातवें वैवस्वत मनु में मनुष्यों का जन्म हुआ।"

पृथ्वी से चन्द्रमा का पृथक होना, आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है, वेद का नहीं। वेद का मत हमने पूर्व अंकित किया है कि

सूर्य और चन्द्रमा एक साथ ही बने हैं। जब चौथे मनु में भूमि समुद्र से निकली थी तो फिर इन चारो मनुओं की उत्पत्ति भूमि के अभाव में कहाँ पर हुई। यह भी एक प्रश्न बनता है।

प्रकृति का यह अटल नियम है कि जितना समय जिसके निर्माण में लगता है उतना ही समय उसके समाप्त होने में भी लगता है। १४ मनवन्तर की पूर्ण सृष्टि है उसमें ६ मनवन्तर पूर्व निर्माण के और ६ मनवन्तर समाप्ति के इस प्रकार १२ मनवन्तरों को १४ में से घटाने पर केवल २ मनवन्तर शेष रहते हैं, जिसमें मानव रहा, ऐसा पं रघुनन्दन शर्मा जी का पूर्व कथन के अनुसार विचार दीखता है। १४ मनवन्तरों में से केवल २ मनवन्तर ही मानव उपयोग के लिये क्यों रखे गये? यह समझ नहीं आ रहा। दूसरे मानव गिनती कर सकता है, पशु पक्षी नहीं। मानव गिनती जोड़कर आगे बढ़ा सकता है; पशु पक्षी नहीं। मानव रोजनामचा बना सकता है रखा सकता है परन्तु पशु पक्षी नहीं। स्वायम्भु मनु से वैवस्वत मनु के प्रारम्भ होते समय तक की गणना किस प्रकार से हुई, किसने रोजनामचा रखा यह कुछ समझ के बाहर की बात लग रही है। शर्मा जी ने वेद ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् आदि सभी के प्रमाण सत्य स्वीकार किये हैं परन्तु अन्त में आकर भूल कर गये। जिस प्रकार एक ब्रह्मचारी गुरुकुल से ज्योतिष विद्या पढ़कर आया। परीक्षा के लिये उसके पिता राजा के पास ले आये। राजा ने परीक्षा के लिये ब्रह्मचारी को एक कोठरी में बन्द कर दिया और राजा ने कहा बताओ मेरे हाथ की मुट्ठी में क्या है? ब्रह्मचारी ने अता—पता बताना आरम्भ किया, उसने कहा—राजन्! आपकी मुट्ठी में जो चीज है उसमें धातु लगी है, वह गोल है, उसमें छेद है और पत्थर भी लगा है। राजा ने कहा— ब्रह्मचारी तुमने अता पता तो सब सही बताया परन्तु यह तो बताओ कि मेरे हाथ की मुट्ठी में है क्या?

इस पर ब्रह्मचारी ने विचार लगा कर कहा महाराज आपके हाथ में चक्की का पाट है। इस पर सब हँस पड़े और कहा मूर्ख तूने यह नहीं सोचा कि क्या चक्की का पाट हाथ की मुट्ठी में आ सकता हैं? राजा ने कहा मेरे हाथ में अंगूठी है। इसमें धातु है, गोल है छेद भी हं और नग भी लगा है। अता पता सही बताने पर भी वह भूल कर गया। यह नहीं समझ पाया, हाथ में अंगूठी ही आ सकती है चक्की का पाट नहीं। इसी प्रकार पूज्य शर्मा जी पूरा अता पता सही बताते हुये और जानते हुए भूल कर बैठे कि मानव की ठत्पत्ति वैवस्वत मनवन्तर में कह गये। जबके यह निर्विवाद और पूर्ण सत्य है कि १ हजार चतुर्युगीयों में से मानव उपयोग के लिये ९९४ चतुर्युगियाँ मिलीं हैं, शेष केवल ६ चतुर्युगियाँ ही संधिकाल की हैं न कि १२ मनवन्तर। यह अटल सत्य है कि स्वायम्भूव मनु काल से ही मानव उपस्थित है। स्वायम्भूव मनु को ही दूसरी उपाधि ब्रह्मा की मिली और उन्होंने ही सारी व्यवस्थाओं को स्थापित किया।

हर मनवन्तर के प्रारम्भ में ही मनु का जन्म होता है, वह छिन्न भिन्न अव्यवस्था को सुचारु बनाकर शुद्ध व्यवस्था को स्थापित करते रहते हैं। मनु की व्यवस्था का प्रभाव मानवों पर ही होगा, पशु—पक्षियों पर नहीं। पशु—पक्षी ही क्या, परमात्मा के रचित ८४ लाख आकृतियों में से केवल एक मानव की आकृति को छोड़ कर शेष को, किसी ने आजतक किसी विद्यालय में पढ़ते देखा है? क्या इनकी चिकित्सा के लिये कोई चिकित्सालय बना है? क्या इनके विवादों को निबटाने के लिये कोई न्यायालय खुला है? नहीं? यह स्वयं ही पढ़ते हैं, स्वयं ही चिकित्सा कर लेते हैं और स्वयं ही विवादों को निबटा लेते हैं। यह बात अलग है कि पालतु जन्तुओं की चिकित्सा के लिये हमने चिकित्सा केन्द्र खोल रखे हैं। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि मानव को छोड़कर शेष सभी जीव, जन्तु,

कीट, पतंग आदि सब को परमात्मा ने उनके शरीरानुसार रहन—सहन का, खान—पान का, प्रजनन और विहार का, रक्षा और चिकित्सा का किलोल, प्रसन्नता और आनन्द का अन्य सारी व्यवस्था का और सौंपे गये कर्त्तव्य कर्म का सम्पूर्ण ज्ञान उनको जन्म से ही दिया है, उन्हें किसी से और किसी ज्ञान के प्राप्त करने की आवश्यकता ही नहीं। यह सब अनुशासन में रहते हैं अपनी अपनी मर्यादाओं का पालन करते है, और कभी उनका उल्लंघन भी नहीं करते। अतएव अव्यवस्थित होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मानव कर्म प्रधान योनि है और शेष कर्मफल भोग योनियाँ हैं। कर्म फल भोग योनियों को बन्धन युक्त रखा जाता है और कर्म प्रधान योनि मानव को बन्धन मुक्त रखा जाता है। मानव अंकुश रहित होने पर निरंकुश होकर व्यवस्था को छिन्न भिन्न करने लगता है। उस छिन्न भिन्न व्यवस्थ को व्यवस्थित करने के लिये ही मनु का आगमन होता है। प्रश्न उठता है तो फिर स्वायम्भूव मनु से लेकर चाक्षुष मनु तक इन ६ मनुओं ने किसको व्यवस्था से बाँधकर रखा। जबकि पशु पक्षियों को किसी व्यवस्था की आवश्यकता नहीं और पण्डित जी के कथनानुसार मानव था ही नहीं, तो क्या उन ६ मनुओं का जन्म लेना निरर्थक हो गया? वास्तव में स्वायम्भुव मनु के काल से ही मानव का अवतरण हुआ था। इसी को ही महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज स्वीकार करते हैं और यही पूर्ण सत्य भी है। ••

आर्यों की उत्पत्ति एवं जन्म स्थलि

आर्यों के शास्त्रों में वेद सर्वोपरि हैं। वेद में परमात्मा ने आज्ञा दी है कि

अहं भूमिमददामार्याय।

अर्थात् मैंने आर्यों को ही भूमि दी है। एक अन्य स्थान पर आदेश है—

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

अर्थात् संसार को आर्य बनाओ। निरुक्त में यास्काचार्य कहते हैं–

आर्य ईश्वर पुत्रः।

अर्थात् आर्य ईश्वर पुत्र हैं। इन सब उद्धरणों का तात्पर्य यही है कि परमेश्वर ने सबसे प्रथम आर्यों को उत्पन्न करके उनको ही भूमि दी है और आर्य सभ्यता में ही सबको रहने की आज्ञा है।

संसार के अन्य मनुष्य ईश्वर पुत्र इसलिये नहीं हैं कि वे ईश्वर की अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न नहीं हुये हैं। वे आर्यों की पतित शाखाओं से ही उत्पन्न हुये हैं। अमैथुनी सृष्टि द्वारा तो केवल आर्यों की ही उत्पत्ति हुई है। इसलिये वे ईश्वर पुत्र कहलाते हैं।

वार्न साहब ने एक पुस्तक लिखी थी, उसका नाम है 'Paradise found or the cradle of the Human Race at the North Pole' इस पुस्तक में उन्होंने सिद्ध किया है कि आदि सृष्टि उत्तरी ध्रुव प्रदेश में हुई। इस पुस्तक से प्रभावित होकर ही लोकमान्य तिलक ने आर्यों का मूल निवास उत्तरी ध्रुव मान लिया।

इंग्लैण्ड के नामी डाक्टर एलेन्सन का कथन है कि 'मनुष्य की खाल पर ध्रुवीय पशुओं के समान लम्बे बाल नहीं हैं, इसलिये इसे ध्रुवीय प्रदेश में रहने के लिये परमेश्वर ने नहीं बनाया। उसकी त्वचा पर पसीना निकलने वाले छोटे–छोटे रोम हैं, इसलिये यह अतिशीत प्रदेश में बसने वाला प्राणी नहीं है। इसी प्रकार भूगोल में लिखा है कि ध्रुव प्रदेश में वनस्पति नहीं होती। वहाँ जो मनुष्य रहते हैं, वे ठिगने हो गये हैं। ध्रुव स्थान में तो प्राणी जी हो नहीं सकता।'

इस प्रकार अब वार्न साहब का मत अस्वीकृत हो गया और उत्तरी ध्रुव में सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना त्याज्य समझी जाती है।[१]

डारविन के विकासवाद की हम पूर्व चर्चा कर चुके हैं और लिख चुके हैं कि मनुष्य कलम की संस्कृति का प्राणी नहीं है। आर्य जाति अत्यन्त सभ्य ज्ञानी और रूपवान् है इसलिये उनका आदि जन्म स्थान एशिया द्वीप में ही कोई होना चाहिये।

१— मैक्समूलर ने मध्य एशिया बतलाया है। २— बाबू उमेश चन्द्र विद्यारत्न मंगोलिया का निर्देश करते हैं। ३— गुरुदेव स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज तिब्बत का संकेत करते हैं। ४— भारतीय सनातन धर्मी भारत देश के करुक्षेत्र पर जोर देते हैं और ५— ईसाई और मुसलमान आदम और हव्वा का जन्म बागे अदन में कहते हैं। आदि सृष्टिं के मूल स्थान के विषय में इतने ही मत प्रसिद्ध हैं।

आदि स्थान की क्या—क्या विशेषताऐं होनी चाहिये १— वह स्थान संसार भर में सबसे ऊँचा और पुराना हो। २— उस स्थान पर शीत और ग्रीष्म दोनों ऋतुऐं मिलती हों। ३— उस स्थान पर मुनष्य की प्रारम्भिक खाद्य पदार्थ फल और अन्न मिलते हों। ४— उस स्थान में अब भी मूल पुरुषों के समान रूप रंग के मनुष्यं बसते हों। ५— उस स्थान के आस पांस भी सब रूप रंगों के विकास और विस्तार की परिस्थिति हो।

हिमालय की ऊँचाई और मनुष्य सृष्टि के सिद्धान्त पर अमरीका का प्रसिद्ध विद्वान् ''डेविस'' अपनी 'ह्रास्मोनिया' नामक पुस्तक के पाँचवें भाग पृष्ठ ३२८ में 'ओकन' की साक्षी से लिखते हैं कि 'हिमालय सबसे ऊँचा स्थान है, इसलिये आदि सृष्टि हिमालय पर ही हुई।

संसार में ऋतुऐं चाहे जितनी होती हों उन सब में शीत और ग्रीष्म की ही प्रधानता होती है, सो हिमालय पर शीत और ग्रीष्म दोनों ही ऋतुऐं होती हैं।

[१] In the Arctic regions no trees at all are found-------and even the men who live there are dwarfs. At the Poles all life ceases. (Geography)

हिमालय पर फल और घास आदि खाद्य पदार्थ होते हैं। अब यह बात निर्विवाद हो गई है कि मनुष्य का प्रधान खाद्य दूध और फल हैं। दूध पशुओं से और फल वृक्षों से पैदा होते हैं। इससे यह पाया जाता है कि मनुष्य से पहले वृक्ष और पशु हो चुके थे। मनुष्य ऐसे शीतोष्ण देश में रह सकता है, जहाँ पशु रह सकते हों और वनस्पति उग सकती हो। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सारी सृष्टि किसी एक ही स्थान में उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि जब वृक्ष और पशुओं के बिना अर्थात् दूध और फ़लों के बिना मनुष्य रह नहीं सकता और पशु बिंना वनस्पति के नहीं रह सकता तो ऐसे देश में जहाँ यह दोनों पदार्थ न होते हों, मनुष्य पैदा ही नहीं हो सकता।

डॉक्टर ई० आर० एलन्स, एल० आर० सी० पी० अपनी पुस्तक ''मेडिकल एस्से'' में लिखते हैं कि ''मनुष्य निस्संदेह ग्रीष्म और शींतोष्ण स्थान का रहने वाला है, जहाँ कि अन्न और फल इसकी खुराक के लिये उग सकते हैं। इन्सान की त्वचा पर जो छोटे—छोटे रोम हैं, उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है, कि मनुष्य ग्रीष्म और शीतोष्ण स्थान का रहने वाला है। बड़े रोम शीत स्थान के रहने वाले मनुष्यों के नहीं होते, इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मनुष्य बर्फानी स्थानों में रहने के लिये नहीं पैदा किया गया।''

प्रसिद्ध सोशियलिस्ट कालचेंटर कहते हैं—''मनुष्य शीतोष्ण और उष्ण स्थानों के रहने वाले हैं और प्राकृतिक फल, अन्न का भोजन करते हैं। अतः वही स्थान उनका स्वाभाविक निवास स्थान है, जहाँ ऐसा भोज्य पदार्थ उत्पन्न होता हो।''

हिमालय रूपी शंकर की गोद में वनस्पति रूपी पार्वती अधिकता से विद्यमान है। वहाँ गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी, ऊँट, हाथी और कुत्ता आदि मनुष्य के संघी प्राणी बहुतायत से रहते हैं। विद्वानों ने पता लगा लिया है कि हिमालय पर प्राणियों के जीवाश्म (फोसिल) पाये जाते हैं।

पृथ्वी पर कोई ऐसा स्थान नहीं है जो हिमालय स्थित प्राणियों के जीवाश्म से अधिक पुराने चिन्ह दे सके। ऐसी दशा में स्पष्ट प्रमाणित होता है कि हिमालय पर मनुष्य के पूर्व उत्पन्न होने वाले और इसके जीवन आधार वृक्ष और गाय आदि पशु पूर्वातिपूर्व काल में उत्पन्न हो गये थे। अतएव हिमालय आदि सृष्टि उत्पन्न करने की पूर्ण योग्यता रखता है।

एक बहुत बड़े भाषा शास्त्री की साक्षी से 'ट्रेलर' महोदय कहते हैं कि 'मनुष्य जाति की जन्म भूमि स्वर्ग तुल्य काश्मीर ही है।[२]

बंगाल के प्रसिद्ध पुरातत्वविशारद बाबू अविनाश चन्द्र दास 'ऋग्वेद इण्डिया' में लिखते हैं कि 'आर्यों का आदि जन्म स्थान काश्मीर ही है।[३]

आदि मनुष्य और मूल आर्य एक ही हैं। आर्यों के विशुद्ध रूप रंग के ब्राह्मण काश्मीर में आज भी निवास करते हैं, जिससे बल पूर्वक कहा जा सकता है कि आदि सृष्टि हिमालय पर ही हुई।

---

[१]And the most ancient form of life occurs near the eastern and of the hill. (Manual of the Geology of India, P. XXIV Palaeogoic Rocks Of the Punjab salt Ranges)

In Asia, Lower Cambrian fossils (Olenellus, Neobolus, etc.) occur in the Salt Range in India (An Intermediate Text Book of Geology, page 198)

The general facies of the fauna however, leaves no room for doubt that the beds of the Salt Range of Punjab, are of Cambrian age, and consequently the oldest in India whose age can be determined with any approach to certainty. (Manual of the Geology of India, page 113)

[२]Adelung, the father of comparative philology and leader in 1806, placed the cradle of mankind in the valley of Kashmir, which he identnied with paradise. (Tailor's Origin of the Ary-ans, page 9)

डॉक्टर एनी बेसेंट कहती हैं कि 'पृथ्वी पर आर्य जाति दस लाख वर्ष से है।[४]

सिद्ध है कि जब से मनुष्य प्राणी इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ तभी से आर्यों का अस्तित्व है। हम कह सकते हैं कि आदि सृष्टि के मूल पुरुष आर्य ही थे।

हिमालयाभिधानोऽयं ख्यातो लोकेषु पावनः।
अर्धयोजनविस्तारः पञ्चयोजनमायतः।।
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुरुत्तमपर्वतः।
ततः सर्वाः ससुत्पन्ना वृत्तयो द्विजसत्तम।।
ऐरावती वितस्ता च विशाला देविका कुहू।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ।। (महाभारत)

अर्थात् संसार में पवित्र हिमालय प्रसिद्ध है। इसमें आधा योजन चौड़ा और पाँच योजन घेरे वाला 'मेरु' है, जहाँ मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। यहीं से ऐरावती, वितस्ता, विशाला, देविका और कुहू आदि नदियाँ निकलती हैं। यहीं पर ब्राह्मण उत्पन्न हुये। इन प्रमाणों से हिमालय के मेरु प्रदेश पर आदि सृष्टि होने का वर्णन है। इससे भी अधिक पुष्ट प्रमाण इस विषय के मिले हैं कि जिनसे हिमालय पर अमैथुनी सृष्टि के होने का निश्चय होता है।

देविका पश्चिमें पार्श्वे मानसं सिद्ध सेवितम्।।

अर्थात् देविका के निकास के पश्चिमी तट पर 'मानस' है। मानस में एक झील है। इसका 'मानस' नाम मानसी अर्थात् अमैथुनी सृष्टि के कारण ही पड़ा है।

---

[३] That this the beautiful mountainous country (Kashmir) and the plains of Saptasindhu were the cradle of the Aryan race. (Rigvedic India, page 55)

[४] The Aryan race on the earth is about a million years old.

(Theosophy and Religion)

तदप्येतदुत्तरस्य गिरेः मनोरवसर्पणम्।।

शतपथ ब्राह्मण १/८/१६

अर्थात् हिमालय पर ही मनु का अवसर्पण अर्थात् जल प्लावन हुआ।

हिमवतः श्रृङ्गे नावं बध्नीतमाचिरम्।।

महाभारत बनपर्व १८७

अर्थात् मनु ने इस हिमालय के श्रृङ्ग में शीघ्रता से जलप्लावन की नाव को बाँधा।

उक्त दोनों प्रमाणों से आदि मनु का संकेत मिलता है। बीच के सातवें वैवस्वत का नहीं। वास्तव में पण्डित जी ने अपनी पहली भूल को यहाँ वैवस्वत मनु लिख कर पुनः दोहराया है जो गलत है। यहाँ पर आदि मनु स्वायम्भूव ही है और उसे ही स्वीकार करना चाहिए।

आप एशिया का मानचित्र हाथ में लें और उसमें सबसे प्रथम पाश्चात्य विद्वानों के बताये अनुसार मध्य एशिया पर एक बिन्दू लगावें। इसके पश्चात् भारतीय विद्वानों के बताये हुए भारतवर्ष के कुरुक्षेत्र पर बिन्दू लगावें। अब महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के बताये हुये तिब्बत पर बिन्दू लगावें और अन्त में पारसी महाशय के निर्देश किये हुये हिन्दूकुश पर बिन्दू लगावें। अब ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि आपने हमारे बताये हुए 'मानस' केन्द्र की चारो सीमाओं को निश्चित कर दिया है। सब सीमायें मानस को केन्द्र बना रहीं है। सारे मत भेद और उलझनें दूर हो गई और यह सत्य सिद्ध हो रहा है कि अमैथुनी आर्य सृष्टि मानसी थी, इसलिये मानस में हुई।

यह मानस स्थल हिमालय पर्वत पर है और इसी के पास मानसरोवर झील भी है, उसी के आस पास सोमलता, सोमबल्ली नामक दिव्य बूँटी बनस्पति उगती है। उस पर पत्ते चन्द्रकला के

अनुसार आते और गिरते हैं। अमावस्या के दिन कुछ नहीं होता, पड़वा (एकम) के दिन छोटा सा ठुन्ठ निकलता है। अगले दिन दोज के चन्द्रमा के समान आकार का पत्ता निकलता है। इसी प्रकार नित्य चन्द्रमा के आकार का पत्ता निकलकर पौर्णमासी के दिन पूरा गोल पत्ता निकलता है। अगले दिन वह गोल पत्ता गिर जाता है, इसी प्रकार नित्य एक पत्ता गिरता जाता है और अमावस्या को कोई पत्ता नहीं होता। अगले दिन पुनः पूर्व प्रकार से पत्ते निकलते रहते हैं। यही चन्द्रमास का भारतीय कैलेन्डर है जो कभी नष्ट नहीं होता। ००

सार तथ्य

१– ईश्वर जीव और प्रकृति यह तीनों अनादि है। इनका न कभी जन्म हुआ और न कभी अन्त होगा।

२– सृष्टि रचनाकाल तीन चरण का है। अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा इन चारो ऋषियों ने स्वाम्भुव मनु को चारो वेदों का सम्पूर्ण ज्ञान देकर ब्रह्मा की उपाधि से विभूषित किया।

३– चारो वेद अपौरुषेय है।

४– सृष्टि रचनाकाल १,९७,३८,१३,१०० सम्वत् २०५६, इसमें हर वर्ष एक–एक बढ़ाते जायें।

५– मानव उत्पत्ति एवं वेद का ज्ञान काल – १,१६,०८,५३,१००

६– परमात्मा के अपौरुषेय चारो वेद एवं मानव के अवतरण से अब तक ४५४ बार कृते अर्थात् सतयुग, ४५४ बार त्रेता, ४५४ बार द्वापर, ४५३ बार कलियुग व्यतीत हो चुके हैं। और ४५४ वें कलियुग के ५१०० वें वर्ष में हम चल रहे हैं। सम्वत् २०५६ में

७— मानव अवतरण स्वायम्भुव मनु के काल से ही है, वैवस्वत मनु से नहीं।

८— सृष्टि रचना हिमालय पर स्थित मानस क्षेत्र मानसरोवर झील के पास का मैदानी भाग जिसमें आर्यों की अमैथुनी सृष्टि हुई थी।

९— सृष्टि के आरम्भ में आर्य लोग— स्वस्थ्य, सुन्दर, सुडौल, पूर्ण ज्ञानी, सभ्य और सुसंस्कृत थे। उनको असभ्य जंगली कहना महानमूर्खता की बात है।

१०— सृष्टि के आरम्भ में आर्य लोग ही उत्पन्न हुये थे, अन्य लोग आर्यों की पतित शाखा से जन्में हैं।

११— आर्यों की पतित शाखायें लगभग ६ मनवन्तर के पश्चात् से ही बनी हों ऐसा ही अनुमान लगता है।

१२— आर्यों का भोजन— फल, अन्न और दूध ही था। आर्यों की पतित शाखाओं से उत्पन्न पतित जनों का ही माँस भोजन होता होगा, आर्यों का नहीं।

१३— आदि अमैथुनी सृष्टि में जन्में आर्य ही ईश्वर पुत्र हैं। मानव की अमैथुनी सृष्टि प्रारम्भ में ही होती है। मध्य आदि में नहीं।

१४— क्राइस्ट (ईसा) कभी भी खुदा का बेटा नहीं हो सकता। अ— वह आदि सृष्टि में नहीं आये। ब— अमैथुनी सृष्टि में वे नहीं जन्में थे।

१५— आर्य कभी पतित कर्म नहीं करते। जो पतित कर्म करते हैं वह आर्यों की किसी पतित शाखा से उत्पन्न जीव हैं।

१६— मनुष्य विकास का प्राणी नहीं है। वह परिपूर्ण विकसित है।

१७— नोबल पुरुस्कार विजेता 'मैटलिक' कहते हैं— इससे बढ़कर सामाजिक विकासवाद की असत्यता का और क्या प्रमाण हो सकता है। इसे हमने विस्तार से पूर्व अंकित किया है वहीं पर देखें।

१८— आदि सृष्टि में आर्यों के जन्म स्थान का नाम आर्यावर्त पड़ा। इसके पश्चात् शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम से भारतवर्ष नाम पड़ा। उसके पश्चात् मुस्लिम आक्रमण के पश्चात् मुसलमानों ने इस देश को हिन्दुस्तान कहा। अन्त में अंग्रेजों से पदाक्रान्त होने के पश्चात् इस देश का नाम इंण्डिया पड़ा।

१९— परमात्मा बिना शरीर के ही सब कुछ करता है अर्थात् वह कभी अवतार नहीं लेता। वह सृष्टि की रचना, पोषण और संचार बिना शरीर के ही करता है, कर सकता है और करता रहेगा।

२०— जीवात्मा शरीर धारण करने पर ही सब कुछ करता है और शरीर रहित होन पर कुछ कर्म नहीं कर सकता। ●●

वेदं शरणं आगच्छामि
सत्यं शरणं आगच्छामि
यज्ञं शरणं आगच्छामि

।। इति ।।

समीक्षा

श्री वीरेन्द्र गुप्तः मनीषी, प्रतिभावान तथा सहृदय आर्य जगत के महान साहित्यकार हैं। आपकी लेखनी से ४८ ग्रन्थों का सृजन हो चुका है। सन् २००१ में श्री गुप्तः जी द्वारा रचित पुस्तक "ईश महिमा" की सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। इस पुस्तक की उपयोगिता का अनुभव करते हुए श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने इसमें 10 सन्दर्भ और सम्मिलित करके नया रूप देकर पुनः प्रकाशित किया है।

वास्तव में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ आध्यात्मिक चर्चा से भरपूर है। मानव के मन में ईश्वर विषय पर अनेक प्रकार के प्रश्न उठते ही रहते हैं, जैसे ईश्वर क्या है? जीवात्मा का स्वरूप क्या है? कहाँ से आता है और कहाँ जाता है? प्रकृति (माया) क्या है? इस प्रकार की जिज्ञासाएं हर व्यक्ति के मन में उठती रहती हैं? उन्हीं का समाधान इस पुस्तक द्वारा किया गया है? यदि मैं कहूँ कि यह पुस्तक आध्यात्मिक विषय पर गागर में सागर भरने के समान है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। मानवीय जिज्ञासाओं का वेदानुसार विवेचन किया गया है। मेरी ऐसी धारणा है कि यह पुस्तक विज्ञजनों के लिए ही नहीं जन साधारण के लिए भी अत्यंत उपयोगी उपहार श्री गुप्तः जी द्वारा दिया गया है। इसमें अनेक भ्रान्तियों को स्पष्ट किया है, जैसे स्वर्ग और नरक इसी लोक में है, आकाशादि में नहीं। "परमतत्व" की बड़े सुन्दर ढंग से विवेचना की गई है। निरर्थक शंकायें, वेदों का अवतरण आदि अनेक गम्भीर विषयों पर विवेकपूर्ण चर्चा की गई है। यदि मैं यह कहूँ कि ईश्वरीय ज्ञान पर "ईश महिमा" पूर्ण शोधग्रन्थ है तो अतिश्योक्ति न होगी।

ए–४९, लाजपत नगर, मुरादाबाद

वेद दर्शन
हिन्दी टीका सहित अनुपम ग्रन्थ। मूल्य 100/-

इच्छानुसार सन्तान
मनचाही पुत्र-पुत्री, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय
सन्तान प्राप्त करना। मूल्य 60/-

पुत्रा प्राप्ति का साधन
पुत्र प्राप्ति के लिये मार्ग दर्शन मूल्य 05/-

गर्भावस्था की उपासना
गर्भित बालक के संस्कार बनाना। मूल्य 01/-

दस नियम
आर्य समाज के नियमों की सरल भाषा
में विस्तार से व्यवस्था। मूल्य 07/-

दैनिक पंच महायज्ञ
नित्य कर्म विधि। मूल्य 07/-

HOW TO BE GET A SON मूल्य 25/-

गायत्री साधन मूल्य 05/-

आनुषक कहानियाँ मूल्य 15/-

सूर्य गुणी

पुत्रदाता औषधि

इस प्रभावयुक्त दिव्यौषधि का गर्भावस्था के 81 से 85 दिन के मध्य में सेवन कराने से पुत्र ही प्राप्त होता है।

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर, मण्डी चौक, मुरादाबाद